।।ओ३म्।।

सांख्यदर्शनम्

ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्

तत्र

द्वितीयोऽध्यायः



भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक

(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

-

[यह केवल निजी प्रगोग हेतु, **अप्रकाशित**, **संशोधन अपेक्षित** संग्रह है।]

द्वितीयोऽध्याय:

विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य ।। १ ।।

(प्रधानस्य) पूर्वाध्यायस्यान्तिमसूत्रात् कर्तृत्वमनुवर्तते। प्रधानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्य कर्तृत्वं खलु (विमुक्तमोक्षार्थम्) विमुक्तशब्दोऽत्र विरक्तार्थः, यद्वा सूत्रपाठो विरक्त एव स्यादुत्तरसूत्रे विरक्तशब्दमादाय विचारप्रसंगात् तथा विरक्तव्यवहारप्रदर्शनात् - ''विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत् (सांख्य०४.२३) विरक्तस्य मोक्षार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वं यतः प्रधानाद् विरक्तस्य हि मोक्षो भवति, विवेकज्ञानेन प्रधानस्य दोषान् निरीक्ष्य प्रवर्तते मोक्षे (वा) समुच्चयार्थे, अथ च (स्वार्थम्) अविमुक्तमविरक्तं स्वीकर्तुं स्वम्प्रत्याकर्षितुं भोगायेति कर्तृत्वम्। प्रकृतेः परार्थत्वात् ततो मोक्षो भोगश्चोभौ पुरुषस्य सिध्यतः, तथा चात्रोच्यते ''ततः प्रकृतेः-संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य'' (सांख्य ०१.६५,६६)

॥ द्वितीयोऽध्याय: ॥

विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य ।।१ ।।

सूत्रार्थ= प्रकृति का कर्तृत्व विरक्त आत्मा को मोक्ष देने और अविरक्त आत्मा को भोग प्रदान करने के लिए है।

[**(प्रधानस्य) पूर्वाध्यायस्यान्तिमसूत्रात् कर्तृत्वमनुवर्तते**] पूर्वाध्याय के अंतिम सूत्र से कर्तृत्व शब्द की अनुवृत्ति आती है। [**प्रधानस्य प्रकृत्याख्यस्याव्यक्तस्य कर्तृत्वं खलु**] प्रधान का अर्थात प्रकृति (सत्व रज तम) नामक अव्यक्त पदार्थ का कर्तृत्व है, वो सृष्टि को बनाने वाली है (किसलिए बना रही है क्यों बना रही है वह प्रयोजन है) [**(विमुक्तमोक्षार्थम्) विमुक्तशब्दोऽत्र विरक्तार्थः**] भाष्यकार कहते हैं यहाँ जो विमुक्त शब्द है वह विरक्त अर्थ में है, शब्द तो है विमुक्त किन्तु वह विरक्त अर्थ में है जिनको वैराग्य प्राप्त हो गया है (स्वामी दयानन्द हैं कपिल हैं जैमिनी हैं, उनको वैराग्य प्राप्त हो गया, ऐसे लोगों के लिए जो वैराग्य को प्राप्त हो चुके हैं उनको मोक्ष देने के लिए यह प्रकृति का कर्तृत्व है) **(यद्वा सूत्रपाठो विरक्त एव)** यहाँ हो सकता है सूत्र पाठ में विरक्त शब्द हो **(स्यादुत्तरसूत्रे विरक्तशब्दमादाय विचारप्रसंगात्)** अगले सूत्र में विरक्त शब्द को लेकर विचार किया गया है **(तथा विरक्तव्यवहारिंप्रदर्शनात्)** विरक्त व्यक्ति का व्यवहार दिखाने के लिए - **(''विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत्) (सांख्य० ४.२३)** विरक्त व्यक्ति का इतना सामर्थ्य होता है की वह छोड़ने योग्य वस्तु को छोड़ देता है गृहण करने योग्य वस्तु को ग्रहण कर लेता है, हंस के समान [**विरक्तस्य मोक्षार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वं**] विरक्त को मोक्ष देने के लिए प्रधान का कर्तृत्व है **(यतः प्रधानाद् विरक्तस्य हि मोक्षो भवति,)** क्योंकि जो विरक्त व्यक्ति है उसका प्रधान से मोक्ष हो जाता है **(विवेकज्ञानेन प्रधानस्य दोषान् निरीक्ष्य प्रवर्तते मोक्षे)** वह विवेक ज्ञान के द्वारा तत्व ज्ञान के द्वारा प्रधान के दोषों का निरीक्षण करके मोक्ष की ओर प्रवृत्त हो जाता है [**(वा) समुच्चयार्थे, सूत्र में जो वा शब्द है वह समुच्य अर्थ में हैं अथ च (स्वार्थम्) अविमुक्तमविरक्तं स्वीकर्तुं स्वम्प्रत्याकर्षितुं भोगायेति कर्तृत्वम्**] और जो अविमुक्त है अविरक्त है अविद्या में ग्रस्त है उसको अपनी ओर खींचने के लिए जगत बनाया और जो विरक्त है उसे मोक्ष देने के लिए बनाया। **(प्रकृतेः परार्थत्वात् ततो मोक्षो भोगश्चोभौ**

प्रकृतिः संहता त्रिगुणत्वात् सा च परार्था पुरुषार्था, पुरुषस्यार्थौ भोगापवर्गौ तयोर्भोगापवर्गयोः साधनाय हि प्रकृतिः, उक्तं च ''प्रकाशक्रियास्थितिशीलं...भोगापवर्गार्थं दृश्यम्'' (योग ०२.१८) ।। १ ।।

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

विरक्तस्य तत्सिद्धेः ।। २ ।।

(विरक्तस्य तत्सिद्धेः) विरक्तस्य मोक्षसिद्धेः, यो हि विरक्तस्तस्य मोक्षस्तु स्वतः सेत्स्यति कथमुच्यते विरक्तस्य मोक्षार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वम् । भवतु खल्वविरक्तस्य भोगार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वं न तु विरक्तस्य मोक्षार्थम् ।। २ ।।

समाधत्ते -

न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात् ।। ३ ।।

(श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिः-न) प्रकृतेर्दोषश्रवणमात्रादेव मोक्षसिद्धिर्विरक्तत्वसिद्धिर्न भवति।

पुरुषस्य सिध्यतः,) प्रकृति के परार्थ होने से पुरुष के भोग और मोक्ष ये दोनों कार्य सिद्ध होते हैं **(तथा चात्रोच्यते ''ततः प्रकृतेः-संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य'')** उस प्रकृति से-महतत्व से प्रकृति का अनुमान होता है और प्रकृति से पुरुष का (संहत के परार्थ होने से पुरुष का अनुमान होता है) **[(सांख्य० १.६५,६६) प्रकृतिः संहता त्रिगुणत्वात]** प्रकृति संहात है तीन गुणों वाली होने से **(सा च परार्था पुरुषार्था,)** वह पर के लिए है दूसरे के लिए है पुरुष के लिए है **(पुरुषस्यार्थौ भोगापवर्गौ)** पुरुष के दो प्रयोजन हैं भोग और अपवर्ग **(तयोर्भोगापवर्गयः साधनाय हि प्रकृतिः)** जीव के दोनों प्रयोजनों भोग और अपवर्ग को सिद्ध करने के लिए प्रकृति है, **(उक्तं च ''प्रकाशक्रियास्थितिशीलं... भोगापवर्गार्थं दृश्यम्'' (योग० २.१८))** योगदर्शन में कहा ही है- प्रकाश क्रिया और स्थिति यह सत्व-रज-तम के स्वभाव हैं, तथा भोग और अपवर्ग के लिए यह जगत है।।१ ।।

पूर्वपक्षी का आक्षेप है -

विरक्तस्य तत्सिद्धेः ।।२ ।।

सूत्रार्थ = जो विरक्त व्यक्ति है उसका तो मोक्ष हो ही जाएगा

[(विरक्तस्य तत्सिद्धेः) विरक्तस्य मोक्षसिद्धेः] विरक्त व्यक्ति का मोक्ष सिद्ध है, **यो हि विरक्तस्तस्य मोक्षस्तु स्वतः सेत्स्यति कथमुच्यते विरक्तस्य मोक्षार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वम्** जो विरक्त व्यक्ति है उसको मोक्ष तो अपने आप ही हो जाएगा, फिर ऐसा क्यों कहा कि प्रकृति ने मोक्ष देने के लिए जगत बनाया। **[भवतु खल्वविरक्तस्य भोगार्थं प्रधानस्य कर्तृत्वं न तु विरक्तस्य मोक्षार्थम्]** आपकी दो मैं से एक बात स्वीकार कर सकते हैं कि प्रकृति ने जगत की रचना अविद्वान को अपनी ओर खींचने के लिए की लेकिन विरक्त को मोक्ष देने के लिए प्रकृति का कोई कर्तृत्व नहीं है।।२ ।।

यतः (अनादिवासनायाः-बलवत्त्वात्) भोगविषयिकाया अनादिवासनायाः प्रबलत्वात् । यावता तद्भोगदोषाः साक्षादनुभूता न स्युर्यद्वा मनननिदिध्यासने न भवेतां तावदनादिवासनानिवृत्तिर्न भवति, तन्निवृत्तिमन्तरेण कुतो विरक्तत्वं मोक्षो वा सम्भवेत्, तदेतत्कृत्यं विवेकतः प्रधानमवगाह्य हि भवितुमर्हति तस्माद् विरक्तस्य मोक्षार्थमपि प्रधानस्य कर्तृत्वम् ।। ३ ।।

तथा च प्रकृतेरेतत्कृत्यम् -

बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् ।। ४ ।।

(बहुभृत्यवत्-वा प्रत्येकम्) वाकारः समुच्चयार्थः। बहुभृत्यवच्चप्रधानस्य कर्तृत्वं प्रत्येकं विरक्तमविरक्तमभिसम्बध्नाति। यथा कश्चिद् बहुभृत्यवान् स्वामी भवति स सेवायां प्रवृत्तान् कांश्चिद् वेतनेन बिभर्ति कांश्चिच्च समाप्तसेवाकालान् कृतार्थान् सेवाकार्याद् विरक्तानपि पुरस्कारेण सत्करोति, सेवाकार्याद्

सिद्धांती समाधान करता है

न श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात् ।।३।।

सूत्रार्थ =केवल उपदेश सुन लेने मात्र से विरक्त की सिद्धि नहीं होती, अनादि काल से चले आ रहे संस्कारों के बलवान होने से।

[(श्रवणमात्रात् तत्सिद्धिः-न) प्रकृतेर्दोषश्रवणमात्रादेव मोक्षसिद्धिर्विरक्तत्वसिद्धिर्न भवति] प्रकृति के दोष सुनने मात्र से मोक्ष की सिद्धि विरक्त अथवा वैराग्य की प्राप्ति संभव नहीं है। **यतः** क्योंकि **[(अनादिवासनायाः-बलवत्त्वात्) भोगविषयिकाया अनादिवासनायाः प्रबलत्वात्]** भोग के संबंध में जो अनादिकाल से वासनाएं व भोग के संस्कार चले आ रहे हैं वह बहुत प्रबल हैं। **[यावता तद्भोगदोषाः साक्षादनुभूता न स्युर्यद्वा मनननिदिध्यासने न भवेतां तावदनादिवासनानिवृत्तिर्न भवति]** जब तक प्रकृति के भोगों के दोषों को साक्षात् अनुभव न करले तब तक समझ नहीं आता अथवा मनन-निदिध्यासन अच्छी प्रकार न करले तब तक अनादि काल के संस्कारों वासनाओं से निवृत्ति नहीं होती, **(तन्निवृत्तिमन्तरेण कुतो विरिंक्तत्वं मोक्षो वा सम्भवेत्)** जब तक अविद्या के अविवेक के वासनाओं के संस्कार नहीं हटेंगे तब तक मोक्ष कैसे संभव है, **(तदेतत्कृत्यं विवेकतः प्रधानमवगाह्य हि भवितुमर्हति तस्माद् विरक्तस्य मोक्षार्थमपि प्रधानस्य कर्तृत्वम्)** यह सम्पूर्ण कार्य विवेक ज्ञान से तत्वज्ञान से प्रकृति की खोज करके प्रकृति का सार जानकार ही हो सकता है इसीलिए जैसा आपने कहा कि विरक्त व्यक्ति को मोक्ष देने के लिए प्रकृति का कर्तृत्व नहीं है, ऐसा नहीं है।।३।।

प्रकृति का जो यह कार्य है वह कैसा है?

बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम् ।।४।।

सूत्रार्थ= बहुत से सेवकों वाली सरकार के समान प्रकृति का प्रत्येक विरक्त व अविरक्त के प्रति भोग और मोक्ष प्रदान करने का कर्तृत्व है।

विरक्ताविरक्तौ प्रति तस्य पुरस्कारवेतनप्रदानाभ्यां सत्करणभरणकर्तृत्वं भवति तथैव विरक्ताविरक्तौ प्रति प्रधानस्य मोक्षभोगप्रदानाभ्यां कर्तृत्वमस्ति। तस्माद् विरक्तस्य मोक्षार्थमपि प्रधानस्य कर्तृत्वं नायुक्तम् ।।४।।

अत्र पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्याससिद्धिः ।।५।।

(प्रकृतिवास्तवे च) विरक्तस्य मोक्षार्थमविरक्तस्य भोगार्थं कर्तृत्वं प्रकृतेश्चेदेवं तु प्रकृतेः कर्तृत्वं वास्तविकं स्यात् पुनः प्रकृतेर्वास्तविके कर्तृत्वे सति तु (पुरुषस्य-अध्याससिद्धिः) प्रकृतस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य कर्तृत्वाध्याससिद्धिः स्यात् तस्य कर्तृत्वमारोपमात्रमेव भवेत् ।।५।।

समाधत्ते -

कार्यतस्तत्सिद्धिः * ।।६।।

[(बहुभृत्यवत्-वा प्रत्येकम्) वाकारिः समुच्चयार्थः] सूत्र में जो वा है वह समुच्चय अर्थ में है। **(बहुभृत्यवच्चप्रधानस्य कर्तृत्वं प्रत्येकं विरक्तमविरक्तमभिसम्बध्नाति)** बहुत सारे नौकरों वाली सरकार के समान, प्रधान का जो कर्तृत्व है वह प्रत्येक के प्रति चाहे वह विरक्त हो या अविरक्त। **[यथा कश्चिद् बहुभृत्यवान् स्वामी भवति स सेवायां प्रवृत्तान् कांश्विद् वेतनेन बिभर्ति कांश्चिच्च समाप्तसेवाकालान् कृतार्थान् सेवाकार्याद् विरक्तानपि पुरस्कारेण सत्करोति]** जैसे कोई बहुत सारे नौकर रखता हो और वह उनका मालिक हो उन नौकरों में जो नौकरी कर रहे हैं उनको वेतन देकर उनका भरण पोषण कर रहा होता है और जिनका सेवा काल समाप्त हो गया है उनको धन देकर पुरस्कृत करता है (पेंशन देता है), **[सेवाकार्याद् विरक्ताविरक्तौ प्रति तस्य पुरिंस्कारवेतनप्रदानाभ्यां सत्करणभरणकर्तृत्वं भवति तथैव वरक्ताविरक्तौ प्रति प्रधानस्य मोक्षभोगप्रदानाभ्यां कर्तृत्वमस्ति]** जैसे उस सेठ का मालिक का दोनों के प्रति कर्तृत्व है सेवा करने वालों को वेतन देना और जिनका सेवाकाल समाप्त हो गया है उनको पुरस्कृत करना सम्मान करना वैसे ही जिसको थोड़ा वैराग्य हो गया शाब्दिक ज्ञान हो गया उसको भी प्रकृति भोग देती है और जो अविरक्त है वह तो भोग भोग ही रहा है। **[तस्माद् विरक्तस्य मोक्षार्थमपि प्रधानस्य कर्तृत्वं नायुक्तम्]** इसलिए प्रकृति के विषय में यहां कहा जाए कि वह विरक्त को सुख भोग दे रही है तो कोई गलत बात नहीं है।।४।।

अब पूर्वपक्षी कहता है-

प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्याससिद्धिः।।५।।

सूत्रार्थ= प्रकृति का कर्तृत्व वास्तविक मानने पर ईश्वर का कर्तृत्व कथन मात्र रह जाएगा।

[(प्रकृतिवास्तवे च) विरक्तस्य मोक्षार्थमविरिंक्तस्य भोगार्थं कर्तृत्वं प्रकृतेश्चेदेवं तु प्रकृतेः कर्तृत्वं वास्तविकं स्यात्] विरक्त को मोक्ष अविरक्त को भोग दे रही है जब दोनों को ही प्रकृति दे रही है तो इस प्रकार से तो प्रकृति का ही वास्तविक कर्तृत्व हुआ फिर ईश्वर का क्या कार्य है **[पुनः प्रकृतेर्वास्तविके**

(कार्यतः-तत्सिद्धिः) कार्यनिर्माणतो यत्प्रकृतिं जगद्रूपे कार्ये परिणमयतीति तस्मात् तस्य पुरुषस्य कर्तृत्वसिद्धिः। अतो नाध्यासमात्रं पुरुषस्य कर्तृत्वम्। उक्तं ह्यत्र ''स हि सर्ववित् सर्वकर्ता'' (सांख्य० ३.५६) ।। ६।।

प्रकृतेः कर्तृत्वे तु -

चेतनोद्देशान्नियमः कण्टकमोक्षवत् ।। ७।।

(चेतनोद्देशात्-नियमः) विरक्तस्य मोक्षार्थेऽविरक्तस्य भोगार्थे प्रकृतेः कर्तृत्वे चेतनोद्देशात् पुरुषविशेषस्येश्वरस्य प्रेरणात् खलु नियमोऽस्ति तत्रापि प्रकृतेर्न स्वतन्त्रं कर्तृत्वमस्ति तस्या जडत्वाद् पारवश्याच्च परवशा प्रकृतिरत्र सांख्ये स्वीकृता हि ''अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्'' (सांख्य० ३.५५) यस्य वशे प्रकृतिः सोऽपि तत्रोक्तः ''स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता'' (सांख्य० ३.५६) (कण्टकमोक्षवत्) यथा कण्टकाद्-दण्डशूलात् कश्चिन्मोच्यते कश्चिन्नेति राजप्रेरणं तत्र नियमः ।। ७।।

कर्तृत्वे सति तु] ऐसी स्थिति में तो प्रकृति का ही वास्तव में कर्तृत्व हुआ **[(पुरुषस्य-अध्याससिद्धिः) प्रकृतस्य पुरुषविशेषस्येश्वरस्य कर्तृत्वाध्याससिद्धिः स्यात् तस्य कर्तृत्वमारोपमात्रमेव भवेत्]** ईश्वर मोक्ष देता है यह तो गौण कथन हुआ, फिर तो प्रकृति मुख्य हो जाएगी और ईश्वर गौंण हो जाएगा।।५।।

सिद्धांती समाधान करते हैं-

कार्यतस्तत्सिद्धिः* ।।६।।

सूत्रार्थ= जगतरूप कार्य को बनाने से ईश्वर के वास्तविक कर्तृत्व की सिद्धि होती है, ईश्वर का कर्तृत्व अध्यास या गौण नहीं है।

[(कार्यतः-तत्सिद्धिः) कार्यनिर्माणतो यत्प्रकृतिं जगद्रूपे कार्ये परिणमयतीति तस्मात् तस्य पुरुषस्य कर्तृत्वसिद्धिः] कार्य निर्माण अर्थात प्रकृति को प्रलय अवस्था से जगतरूप में परिणित करता है इसलिए मुख्य कर्तृत्व तो ईश्वर का ही है। **[अतो नाध्यासमात्रं पुरुषस्य कर्तृत्वम्]** अतः प्रकृति से बद्ध को भोग दिलाने व मुक्त को मोक्ष दिलाने में ईश्वर का ही मुख्य कर्तृत्व है। **[उक्तं ह्यत्र ''स हि सर्ववित् सर्वकर्ता'' (सांख्य० ३.५६) क्योंकि सांख्य में ही कहा है-** वह ही सारे कार्य करने वाला है।।६।।

चेतनोद्देशान्नियमः कण्टकमोक्षवत्।।७।।

सूत्रार्थ= चेतन ईश्वर की प्रेरणा से प्रकृति के द्वारा किसी विरक्त को मोक्ष देने का और अविरक्त को भोग देने का नियम है, जैसे=राजा के आदेश से किसी अपराधी को फांसी देने और किसी निर्दोष को छोड़ देने का नियम है।

[(चेतनाद्धेशात्-नियमः) विरक्तस्य मोक्षार्थेऽविरक्तस्य भोगार्थे प्रकृतेः कर्तृत्वे चेतनोद्देशात् पुरुषविशेषस्येश्वरस्य प्रेरणात् खलु नियमोऽस्ति] विरक्त को मोक्ष देने के लिए और अविरक्त को भोग देने के लिए प्रकृति का कर्तृत्व स्वीकार कर लेने पर चेतन (पुरुष) के कहने पर, ईश्वर की प्रेरणा से यह नियम

अन्यच्च -

अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत् ॥८॥

(अन्ययोगे-अपि तत्सिद्धिः) चेतनात् पुरुषादन्यत्प्रधानं प्रकृत्याख्यमव्यक्तम्। पूर्वोक्ते प्रधानस्य कर्तृत्वयोगेऽपि तत्सिद्धिस्तस्य पुरुषस्य कर्तृत्वसिद्धिर्भवति।(न-आञ्जस्येन) यतो नान्यस्याव्यक्तस्याञ्जस्येन स्वतः कर्तृत्वं पुरुषमन्तरेण सिध्यति (अयोदाहवत्) यथाऽयसो लोहस्य दाहो न स्वतः किन्तु दाहस्वरूपस्य प्रकाशस्वरूपस्याग्नेः संसर्गाद्भवति तथैवात्रापि पुरुषविशेषसंसर्गाद् विरक्तमोक्षार्थमविरक्तभोगार्थं कर्तृत्वं प्रधानस्य भवति। उक्तं हि पूर्वम् ''कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् प्रधानस्य'' (सांख्य- १.१६४,२.१) ॥८॥

यद्विषये पुरुषविशेस्येश्वरस्य प्रधानस्य च कर्तृत्वमुक्तं सा पुनः सृष्टिः कीदृशीत्युच्यते -

रागविरागयोर्योगः सृष्टिः ॥९॥

है [**तत्रापि प्रकृतेर्न स्वतन्त्रं कर्तृत्वमस्ति**] इस सम्पूर्ण व्यवस्था में प्रकृति स्वतंत्र कर्ता नहीं है [**तस्या जडत्वाद्**] क्योंकि वह जड़ है [**पारवश्याच्च परवशा प्रकृतिरत्र सांख्ये स्वीकृता हि**] पराधीन है परवश है ईश्वर के वश में रहकर वह किसी को भोग दे रही है और किसी को मोक्ष, सांख्य दर्शन में इस बात को स्वीकार किया है कि वह परवश है [**''अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्''(सांख्य०३.५५)**] मूल प्रकृति कार्य नहीं है कारण है फिर भी वह जगत निर्माण में ईश्वर के द्वारा संलग्न हो जाती है [**यस्य वशे प्रकृतिः सोऽपि तत्रोक्तः**] जिसके अधीन प्रकृति है उसका नाम है [**''स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता''(सांख्य०३.५६)**] वह सर्वशक्तिमान सर्व कर्ता ईश्वर है [**(कण्टकमोक्षवत्) यथा कण्टकाद्-दण्डशूलात् कश्चिन्मोच्यते कश्चिन्नेति राजप्रेरिणं तत्र नियमः**] जैसे जल्लाद किसी को फांसी पर लटका देता है किसी को दंड दे देता है किसी को छोड़ देता है यह कार्य जल्लाद करता तो है परंतु राजा के अधीन, उसके आदेश के अनुसार ही करता है।।७।।

अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत् ॥८॥

सूत्रार्थ= प्रकृति का कर्तृत्व स्वीकार करने पर भी ईश्वर के कर्तृत्व की सिद्धि हो जाएगी जैसे लोहा अपने आप नहीं मुड़ता अग्नि के सहयोग से होता है, ऐसे ही प्रकृति सारा भोग और मोक्ष नहीं दे पाएगी ईश्वर के सहयोग से ही दे पाएगी।

[**(अन्ययोगे-अपि तत्सिद्धिः) चेतनात् पुरुषादन्यत्प्रधानं प्रकृत्याख्यमव्यक्तम्**] चेतन पुरुष से जो भिन्न है जिसका प्रकृति नाम अव्यक्त है। [**पूर्वोक्ते प्रधानस्य कर्तृत्वयोगेऽपि तत्सिद्धिस्तस्य पुरुषस्य कर्तृत्वसिद्धिर्भवति**] जैसा पहले कहा कि प्रकृति जगत को बना रही है उसका कर्तृत्व सिद्ध होने पर भी, परमात्मा के कर्तृत्व की मुख्य सिद्धि हो जाती है। [**(न-आञ्जस्येन) यतो नान्यस्याव्यक्तस्याञ्जस्येन स्वतः कर्तृत्वं पुरुषमन्तरेण**] क्योंकि जो परमात्मा से भिन्न है प्रकृति है उसका स्वयं कर्तृत्व बिना पुरुष (परमात्मा) के सिद्ध नहीं होगा [**(अयोदाहवत्) यथाऽयसो लोहस्य दाहो न स्वतः किन्तु दाहस्वरूपस्य प्रकाशस्वरूप-स्याग्नेः संसर्गाद्भवति**] जैसे लोहे का मुड़ना जुलना अपने आप नहीं होता किन्तु जो जलाने वाली है नरम

(रागविरागयोः-योगः) रागस्य प्रतिपक्षी विरागस्तस्मादत्र स विरागो द्वेषार्थः। रागद्वेषयोर्योगः-रागद्वेषयोः प्रवर्तनम्। एकस्मिन् रागस्तर्ह्यन्यस्माद् द्वेषः, एकस्माद् द्वेषस्तदाऽपरस्मिन् रागः। इत्थं रागद्वेषभूमिः (सृष्टिः) सृष्टिरस्तीति पुरुषभावनामपेक्ष्य सृष्टिलक्षणम् ।। ९।।

सा च सृष्टिः -

महदादिक्रमेण पञ्चभूतानाम् ।। १०।।

(महदादिक्रमेण) प्रकृतितो महान् महत्तत्त्वं पुनश्च ततोऽहंकारः, अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि तथा चोभयमिन्द्रियम्। इत्थं क्रमेण पश्चात् (पञ्चभूतानाम्) तन्मात्रेभ्यः पञ्चस्थूलभूतानां पञ्चस्थूलभूतपर्यन्तानां सृष्टिर्भवति ।। १०।।

तत्र च -

आत्मार्थत्वात् सृष्टेर्नैषामात्मार्थ आरम्भः ।। ११।।

(आत्मार्थत्वात् सृष्टेः) महदादिक्रमोऽनुवर्तते । महदादिक्रमेण पञ्चभूतेभ्यः पूर्वा या

करने वाली अग्नि है उसके संसर्ग से जलना मुड़ना होता है **[तथैवात्रापि पुरुषविशेषसंसर्गाद् विरक्तमोक्षार्थमविरक्तभोगार्थं कर्तृत्वं प्रधानस्य भवति]** इसी प्रकार यहाँ पर भी पुरुष विशेष परमात्मा के संसर्ग से विरक्त को मोक्ष देने के लिए तथा अविरक्त को भोग देने के लिए प्रकृति का कर्तृत्व होता है। **[उक्तं हि पूर्वम् ''कर्तृत्वं प्रधानस्य भवति। उक्तं हि पूर्वम् ''कर्तृत्वं चित्सान्निध्यात् प्रधानस्य'' (सांख्य० १.१६४,२.१)]** जैसा पहले ही कहा था प्रधान का कर्तृत्व चेतन के सानिध्य से है।।८।।

जिसके विषय में पुरुष विशेष ईश्वर का मुख्य कर्तृत्व है और प्रकृति का गौण कर्तृत्व है वह सृष्टि कैसी है?

रागविरागयोर्योगः सृष्टिः ।।९।।

सूत्रार्थ= जहां राग-द्वेष की प्रवृति चलती रहती है वही सृष्टि है ।

[(रागविरागयोः-योगः) रागस्य प्रतिपक्षी विरागस्तस्मादत्र स विरागो द्वेषार्थः] राग का प्रतिपक्षी विराग है इसलिए यहाँ पर विराग का अर्थ करेंगे द्वेष। **[रागद्वेषयोर्योगः-रागद्वेषयोः प्रवर्तनम्]** राग और द्वेष जहां पर निरंतर है उसका नाम सृष्टि है। **[एकस्मिन् रागस्तर्ह्यन्यस्माद् द्वेषः]** एक वस्तु में राग है क्योंकि उसमें सुख है एक वस्तु में द्वेष है क्योंकि उसमें दु:ख है, **[एकस्माद् द्वेषस्तदाऽपरस्मिन् रागः]** किसी एक में द्वेष होगा तो दुसरे में राग हो जाएगा। **[इत्थं रागद्वेषभूमिः (सृष्टिः)]** सृष्टि वह भूमि है जहां निरंतर राग द्वेष चलता रहता है **सृष्टिरस्तीति पुरुषभावनामपेक्ष्य सृष्टिलक्षणम्** जीवात्मा की भावना के आधार पर यह सृष्टि का लक्षण किया।।९।।

सा च सृष्टि :- और यह सृष्टि कैसी है?

महदादिक्रमेण पञ्चभूतानाम् ।। १०।।

सृष्टिरुभयेन्द्रियपर्यन्ता तस्याः सृष्टेरात्मार्थत्वमात्मोपकरणसम्पादनार्थत्वं बुद्ध्यहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियसाधनार्थत्वमस्ति । वक्ष्यति ह्यग्रेऽपि ''पुरुषार्थ करणोद्भवः...'' (सांख्य०२.३६) तथा ''पुरुषार्थ संसृतिर्लिंगानां...'' (सांख्य ०३.१६) तस्मात् तदग्रे (एषाम्-आरम्भः-आत्मार्थः-न) एषां पूर्वसूत्रे साक्षात्पठितानां पञ्चभूतानां विशेषणम् । एषां पञ्चस्थूलभूतानां पृथिव्यादीनां व्यक्तिसमारम्भ आत्मार्थ आत्मोपकरणसम्पादनार्थो न, आत्मोपकरणानि न भौतिकानि वक्ष्यति ह्यग्रे । किन्तु भौतिकवस्तुसम्पादरनार्थः । एवं सृष्टेर्विभागद्वयं प्रदर्शितं तत्रैको भागस्तु खल्विन्द्रियात्मको द्वितीयश्च भौतिकः । तथैव योगदर्शनेऽपि प्रतिपादितं विभागद्वयम् '...भूतेनद्रियात्मकं दृश्यम्'' (योग ०२.१८) अस्य सूत्रस्यानिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चायुक्तोऽर्थः कृतः । तत्र 'महदादीनां सृष्टिः पुरुषमोक्षार्था, न स्वमोक्षार्था प्रकृतेरेव सृष्टिः स्वमोक्षार्था महदादयस्तु प्रकृतौ लीयन्ते तेषामनित्यत्वात् तत्र न स्वार्थमोक्षप्रयोजनं

सूत्रार्थ= महतत्व आदि की उत्पत्ति के क्रम से पाँच महाभूतों तक वस्तुओं का समुदाय सृष्टि **कहलाता है।**

[**(महदादिक्रमेण) प्रकृतितो महान् महत्तत्त्वं पुनश्च ततोऽहंकारः, अहंकारात् पञ्चतन्मात्राणि तथा चोभयमिन्द्रियम्**] प्रकृति से महतत्व बना महतत्व से अहंकार, अहंकार से पाँच तन्मात्राएं एसे ही दोनों प्रकार की इंद्रियाँ ।[**इत्थं क्रमेण पश्चात् (पञ्चभूतानाम्) तन्मात्रेभ्यः पञ्चस्थूलभूतानां पञ्चस्थूलभूतपर्यन्तानां सृष्टिर्भवति**] इस क्रम के पश्चात तन्मात्राओं से पाँच स्थूलभूत, पाँच स्थूल भूतों तक यह सृष्टि है।। १०।।

तत्र च -

आत्मार्थत्वात् सृष्टेर्नैषामात्मार्थ आरम्भः ।। ११ ।।

सूत्रार्थ= महतत्व से लेकर इंद्रियों तक कि उत्पत्ति के उपकरणों के लिए है, और पाँच महाभूतों कि उत्पत्ति आत्मा के उपकरण बनाने के लिए नहीं है ।

[**(आत्मार्थत्वात् सृष्टेः) महदादिक्रमोऽनुवर्तते**] महदादि क्रम की अनुवृति आ रही है। [**महदादिक्रमेण पञ्चभूतेभ्यः पूर्वा या सृष्टिरुभयेन्द्रियपर्यन्ता तस्याः सृष्टेरात्मार्थत्वमात्मोपकरणसम्पादनार्थत्वं बुद्ध्यहंकारमनोज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियसाधनार्थत्वमस्ति**] महदादि क्रम से जो सृष्टि बनी पाँच सूक्ष्म एवं स्थूल भूतों से पहले तक व उभय इंद्रिय तक जो सृष्टि बनी, वह सृष्टि आत्मा के लिए बनाई गयी अर्थात् आत्मा के लिए उपकरण बनाने के लिए बनाई गई थी उसमें क्या था? बुद्धि, अहंकार, मन फिर ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय इस प्रकार से यह १३ साधन बनाए गए।[**वक्ष्यति ह्यग्रेऽपि ''पुरुषार्थ करणोद्भवः...''**] आगे सूत्रकार स्वयं कहेंगे 'ये १३ करण पुरुष के लिए बनाए गए' [**(सांख्य ०२.३६) तथा ''पुरुषार्थ संसृतिर्लिंगानां...''**] और सूक्ष्म शरीर जीवात्मा के अगले जन्म में साथ जाता है [**(सांख्य ०३.१६) तस्मात् तदग्रे (एषाम्-आरम्भः-आत्मार्थः-न) एषां पूर्वसूत्रे साक्षात्पठितानां पञ्चभूतानां विशेषणम्**] यह पाँच स्थूल भूत उपकरण के लिए नहीं बनाए गए बल्कि उससे पहले के १३ पदार्थ आत्मा के उपकरण के रूप में बनाए गए। [**एषां पञ्चस्थूलभूतानां पृथिव्यादीनां व्यक्तिसमारम्भ आत्मार्थ आत्मोपकरणसम्पादनार्थो**] न इन पाँच स्थूल भूतों पृथ्वी आदि का निर्माण किया गया इनका व्यक्तित्व

घटते; इति तयोराशयः । प्रकृतेरेवसृष्टिः स्वमोक्षोर्था न महदादीनां स्वमोक्षार्था, यदुच्यते किं महदादीनां या सृष्टिः सा प्रकृतेः सृष्टिर्न किञ्च महदादिभ्यो भिन्नाऽपि काचित्प्रकृतेः सृष्टिरस्ति यदर्थमुच्यते प्रकृतेः सृष्टिः स्वमोक्षार्था । सर्वा हि सृष्टिः प्रकृतेः सृष्टिः, इत्थमनर्गलकथनेन किम् । सांख्यसिद्धान्तविरुद्धं च कथनमिदम् ।। ११ ।।

दिक्कालावाकाशादिभ्यः ।। १२ ।।

(दिक्कालौ-आकाशादिभ्यः) यौ दिक्कालौ व्यवह्रियेते तौ खल्वाकाशादिभ्य एव निर्धारणीयौ यतो हि तावेतावपेक्षयैव व्यवह्रियेते, पृथिवीमपेक्ष्याकाशविशेषो दिग्भवति तथा वाय्वादीनां स्वरूपोपादानहानव्यवहारावधिः कालः । तस्मादत्र पृथङ्न सूत्रयितव्यौ किन्त्वाकाशाद्यन्तर्भूतावेव ।। १२ ।।

अथ या सृष्टिर्महदादिक्रमेणात्मार्थे पुरुषोपकरणार्थे दशमैकादशयोः सूत्रयोः सूचिता सा विव्रियते

बनाया गया ये आत्मा के उपकरण बनाने के लिए नहीं किया, [**आत्मोपकरणानि न भौतिकानि वक्ष्यति ह्यग्रे**] आगे सूत्रकार स्वयं कहेंगे ये जो आत्मा के उपकरण है वह भौतिक नहीं है अहंकारिक है। [**किन्तु भौतिकवस्तुसम्पादरनार्थः**] पाँच महाभूतों की रचना भौतिक वस्तुओं के निर्माण हेतु की गयी। [**एवं सृष्टेर्विभागद्वयं प्रदर्शितं तत्रैको भागस्तु खल्विन्द्रियात्मको द्वितीयश्च भौतिकः**] इस प्रकार से सृष्टि के दो विभाग दिखाये गए उसमें एक भाग इंद्रिय स्वरूप है और दूसरा भौतिक है। [**तथैव योगदर्शनेऽपि प्रतिपादितं विभागद्वयम् '...भूतेनद्रियात्मकं दृश्यम्''(योग ०२.१८)**] ऐसे ही योगदर्शन में दो विभाग बताए =जो जगत है वह भूत और इंद्रिय दो स्वरूप वाला है [**अस्य सूत्रस्यानिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चायुक्तोऽर्थः**] कृतः इस सूत्र का विज्ञान भिक्षु भाष्य में अनिरुद्ध वृति में अयुक्त अर्थ किया है। [**तत्र 'महदादीनां सृष्टिः पुरुषमोक्षार्था, न स्वमोक्षार्था प्रकृतेरेव सृष्टिः स्वमोक्षार्था महदायस्तु प्रकृतौ लीयन्ते तेषामनित्यत्वात् तत्र न स्वार्थमोक्षप्रयोजनं घटते; इति तयोराशयः**] उनके भाष्य का सार यह है कि =महदादि कि जो सृष्टि कि गयी वह तो जीवात्मा के मोक्ष के लिए, बो अपने मोक्ष के लिए नहीं है, प्रकृति कि जो सृष्टि है वह अपने मोक्ष के लिए है, महदादि जो पदार्थ है वह तो प्रकृति में विलीन हो जाएंगे वो अनित्य हैं इन दोनों का अभिप्राय इस प्रकार से है महदादि तो टूट फुट कर प्रकृति में विलीन हो जाएंगे बो तो अनित्य है उनका तो मोक्ष होगा नहीं, जीवात्मा का मोक्ष होगा महादादि में स्वार्थ प्रयोजन घटता नहीं है। [**प्रकृतेरेवसृष्टिः स्वमोक्षोर्था न महदादीनां स्वमोक्षार्था**] प्रकृति कि ही सृष्टि अपने मोक्ष के लिए है ,महदादि कि जो सृष्टि है वह अपने मोक्ष के लिए नहीं है [**यदुच्यते किं महदादीनां या सृष्टिः सा प्रकृतेः सृष्टिर्न**] आप जो महदादि कि सृष्टि कह रहे है क्या वह प्रकृति कि सृष्टि नहीं है[**किञ्च महदादिभ्यो भिन्नाऽपि काचित्प्रकृतेः सृष्टिरस्ति यदर्थमुच्यते प्रकृतेः सृष्टिः स्वमोक्षार्था**] क्या महदादि से भिन्न प्रकृति कि कोई अलग सृष्टि है क्या जिसके लिए उन्होंने कहा कि प्रकृति कि जो सृष्टि है वह स्व मोक्ष के लिए है। [**सर्वा हि सृष्टिः प्रकृतेः सृष्टिः**] जितनी भी जो रचना है वह प्रकृति कि ही रचना है उसी का ही रूपांतर है, [**इत्थमनर्गलकथनेन किम्**] ऐसा अनर्गल (व्यर्थ कथन) कहने से क्या लाभ जब प्रकृति से भिन्न कोई सृष्टि है ही नहीं। [**सांख्यसिद्धान्तविरुद्धं च कथनमिदम्**] इन दोनों का यह कथन सांख्य सिद्धान्त के विरुद्ध है ।। ११ ।।

–

अध्यवसायो बुद्धिः ।।१३।।

(अध्यवसायः-बुद्धिः) पुरुषशरीरेऽध्यवसायो निश्चयो यतो भवति तद्धर्मकमुकपरणं बुद्धिरुच्यते सामष्टिकं महत्तत्त्वम्, अध्यवसायस्तु सत्त्वस्वरूपवत्त्वात् ।।१३।।

तत्कार्यं धर्मादिः ।।१४।।

(तत्कार्यं धर्मादिः) तस्या बुद्धेरन्तःकरणस्य कार्यं धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यप्रवृत्तिश्च रजोयोगात् ।।१४।।

महदुपरागाद् विपरीतम् ।।१५।।

दिक्कालावाकाशादिभ्यः ।।१२।।

सूत्रार्थ= दिशा और काल का निर्णय आकाश आदि पदार्थो के माध्यम से करना चाहिए।

[(दिक्कालौ-आकाशादिभ्यः) यौ दिक्कालौ व्यवह्रियेते तौ खल्वाकाशादिभ्य एव निर्धारणीयौ यतो हि तावेतावपेक्षयैव व्यवह्रियेते] ये जो दिशा और काल व्यवहार में आते हैं इन दोनों का निर्धारण आकाश आदि पदार्थो के माध्यम से कर लेना चाहिए क्योंकि ये दोनों आकाश आदि पदार्थो कि अपेक्षा से व्यवहार में आते हैं , **[पृथिवीमपेक्ष्याकाशविशेषो दिग्भवति]** पृथ्वी के अपेक्षा से आधार से आकाश का एक भाग हिस्सा दिशा कहलाती है **[तथा वाय्वादीनां स्वरूपोपादानहानव्यवहारावधिः कालः]** और वायु आदि जो पदार्थ है जिनका स्वरूप है अर्थात निर्माण हुआ फिर कुछ समय पश्चात उसका हान विनाश क्षय हो गया इस अवधि को काल कहते हैं। **[तस्मादत्र पृथङ् न सूत्रयितव्यौ किन्त्वाकाशाद्यन्तर्भूतावेव]** किन्तु इनके कोई परमाणु नहीं होते परंतु व्यवहार में आते हैं आकाश आदि अन्तर्भूत इसलिए इनकी चर्चा की।।१२।।

जो सृष्टि महदादि क्रम से बनाई गयी थी और आत्मा के उपकरण के रूप में बनाई गयी थी दशवें और ग्यारहवें सूत्र में जिसकी चर्चा की गयी थी अब उसका विवरण आगे बताते हैं।

अध्यवसायो बुद्धिः ।।१३।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा निर्णय निश्चय जिस साधन से करता है उसका नाम बुद्धि है ।

[(अध्यवसायः-बुद्धिः) पुरुषशरीरेऽध्यवसायो निश्चयो यतो भवति तद्धर्मकमुकपरणं बुद्धिरुच्यते सामष्टिकं महत्तत्त्वम्, अध्यवसायस्तु सत्त्वस्वरूपवत्त्वात्] पुरुष शरीर में एक कार्य होता है अध्यवसाय अर्थात् निश्चय किया जाता है वह जिस उपकरण से होता है उस धर्म वाले उपकरण को बुद्धि कहते हैं, बुद्धि सबके लिए समान बनाई जाती है, बुद्धि निश्चय करने में सहायता करता है क्योंकि इसका निर्माण सत्व

(महत्-उपरागात् विपरीतम्) महत्तत्त्वं शरीरे बुद्धिरूपं तत्खलूपरागात् तमसा सह वर्तमानं विपरीतंधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्योपगं भवति ।।१५।।

अथाहंकारः -

अभिमानोऽहंकारः ।।१६।।

(अभिमानः-अहंकारः) पुरुषशरीरेऽभिमानो भवति यतः सोऽहंकारः ।।१६।।

एकादश पञ्चतन्मात्रं तत्कार्यम् ।।१७।।

(एकादश पञ्चतन्मात्रम्) समनस्कानि ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि (तत्कार्यम्) अहंकारस्य कार्यम् ।।१७।।

प्रधान है।।१३।।

तत्कार्य धर्मादिः ।।१४।।

सूत्रार्थ= उसका कार्य धर्मादि में रुचि उत्पन्न करना है।

[(तत्कार्यं धर्मादिः) तस्या बुद्धेरन्तःकरणस्य कार्यं धर्मो ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यप्रवृत्तिश्च रजोयोगात्] उस बुद्धि का जो अंतकरण है उसका कार्य धर्म ज्ञान वैराग्य और एश्वर्य की प्रवृति हो जाती है रजोगुण की प्रबलता से ।।१४।।

महदुपरागाद् विपरीतम् ।।१५।।

सूत्रार्थ= तमोगुण के प्रधान प्रभाव से बुद्धि उल्टे कार्यों का अधर्म अज्ञान आदि का निर्णय करने लगती है।

[(महत्-उपरागात् विपरीतम्) महत्तत्त्वं शरीरे बुद्धिरूपं तत्खलूपरागात् तमसा सह वर्तमानं विपरीतधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्ययोपगं भवति] जो बुद्धि रूप तत्व है हमारे शरीर में है जब तमोगुण के साथ सम्बंध होता (तमोगुण उभरता) है तब अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनेश्वर्य को प्राप्त हो जाती है।। १५।।

अभिमानोऽहंकारः ।।१६।।

सूत्रार्थ= जो जीवात्मा को ''मैं'' की अनुभूति कराता है वह अहंकार है।

[(अभिमानः-अहंकारः) पुरुषशरीरेऽभिमानो भवति यतः सोऽहंकारः] पुरुष शरीर में अभिमान होता है जिस पदार्थ से वह अहंकार है।। १६।।

एकादश पञ्चतन्मात्रं तत्कार्यम् ।।१७।।

सूत्रार्थ= मन सहित ग्यारह इंद्रिय और तन्मात्राएं ये अहंकार के कार्य हैं।

[(एकादश पञ्चतन्मात्रम्) समनस्कानि ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि (तत्कार्यम्)

सात्त्किमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहंकारात् ।। १८ ।।

(वैकृतात्-अहंकारात्) संशुद्धात् सत्त्वभूमिवतोऽहंकारात् (सात्त्विकम्-एकादशकं प्रवर्तते) इन्द्रियाणामेकादशसंख्याकं मनः सात्त्विकं सत्त्वभूमिमदभिव्यक्तं भवति। यथोक्तमग्रे ऽपि ''गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत्''(सांख्य ०२.२७) राजसादहंकाराद् राजसं तामसात् तामसमित्यपि योजनीयम्। एवं मनसस्त्रिगुणत्वेन प्रवर्तनं भवति ।। १७।।

किं तदेकादशकमित्युच्यते -

कर्मेनद्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम् ।। १९ ।।

(कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैः-आन्तरम्) कर्मेन्द्रियैर्ज्ञानेन्द्रियैर्दशभिः सह यदान्तरमान्तरिकमिन्द्रियं मनस्तत्

अहंकारस्य कार्यम्] मन सहित ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और पाँच तन्मात्राऐं ये पाँच अहंकार के कार्य हैं।। १ ७।।

सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहंकारात् ।। १८ ।।

सूत्रार्थ= ग्यारह संख्या वाला सात्विक मन भी सत्व प्रधान अहंकार से उत्पन्न होता है।

[(वैकृतात्-अहंकारात्) संशुद्धात् सत्त्वभूमिवतोऽहंकारात्] शुद्ध सत्वप्रधान अहंकार से इंद्रियों में **[(सात्त्विकम्-एकादशकं प्रवर्तते) इन्द्रियाणामेकादशसंख्याकं मनः सात्त्विकं सत्त्वभूमिमदभिव्यक्तं भवति]** जो ग्यारहवी संख्या वाला मन है सत्व भूमि वाला अभिव्यक्त होता है। **[यथोक्तमग्रेऽपि ''गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत्''(सांख्य ०२.२७)]** जैसा की आगे भी बताया गया है, गुणों के परिणाम में भेद होने से भिन्न-भिन्न अवस्थाएं होती हैं, शरीर की अवस्था के समान **[राजसादहंकाराद् राजसं तामसात् तामसमित्यपि योजनीयम्]** राजसिक अहंकार से राजसिक मन बनता है, तामसिक अहंकार से तामसिक मन बनता है (अब ये भाष्य की पंक्ति ठीक नहीं=न तो अहंकार तीन प्रकार का है न मन, तीन अहंकार और तीन मन मानना शास्त्र के विरुद्ध है)। **[एवं मनसस्त्रिगुणत्वेन प्रवर्तनं भवति]** इस प्रकार से मन त्रिगुणात्मक होने से गुणों में परिवर्तन होता रहता है ।। १८।।

वह ग्यारह समुदाय का पदार्थ क्या है?

कर्मेनद्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम् ।। १९ ।।

सूत्रार्थ=कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय के साथ रहने वाला और शरीर के अंदर कार्य करने वाला जो साधन है वह मन है।

[(कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैः-आन्तरम्) कर्मेन्द्रियैर्ज्ञानेन्द्रियैर्दशभिः] सह यदान्तरमान्त-रिकमिन्द्रियं मनस्तत् (एकादकम्) एकादशसंख्याकम् कर्मेन्द्रियो और ज्ञानेन्द्रियों इस प्रकार से दश इंद्रियों के साथ जो आंतरिक इंद्रिय मन है वह ग्यारह संख्या वाला है। **[यथा मनावपि ''एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्'' (मनु ०२.९२)]** जैसे मनुस्मृति में भी बताया है- ग्यारहवें मन को समझना

(एकादकम्) एकादशसंख्याकम्। यथा मनावपि ''एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्'' (मनु० २.९२) ।। १९।।

तानि खल्विन्द्रियाणि -

आहंकारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि ।। २०।।

(भौतिकानि न) भूतोपादानकानि न सन्ति (आहंकारिकत्वश्रुतेः) तेषामहंकार-कार्यत्वश्रवणात्। ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च'' (मुण्ड ०२.१.३) ।। २०।।

इन्द्रियाणि न भौतिकानीत्युच्यते, पुनः ''पुरुषस्य मृतस्याग्निं वाग्प्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रमसं दिशः श्रोत्रम्'' (बृह ०३.२.१३) कथं तेषां लयो भूतेषु प्रतिपाद्यते । अत्रोच्यते -

---

चाहिए, मन अपने गुणों से उभयात्मक कहलाता है (मन ज्ञानेन्द्रियों के साथ जुड़कर ज्ञान प्राप्त कराता है कर्मेन्द्रियों के साथ जुड़कर कर्म कराता है)।। १९।।

अब उन इंद्रियों के विषय में कहते हैं-

आहंकारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि ।। २०।।

सूत्रार्थ= इंद्रियों की उत्पत्ति श्रुति में अहंकार से बतलायी गयी है, इसलिए इंद्रियां पाँच भूतों से नहीं बनी हैं।

[**(भौतिकानि न) भूतोपादानकानि न सन्ति**] इंद्रियाँ भूत उपदान वाली नहीं है (इंद्रियों का उपदान कारण पाँच महाभूत नहीं हैं) [**(आहंकारिकत्वश्रुतेः) तेषामहंकार-कार्यत्वश्रवणात्**] इंद्रियाँ अहंकार के कार्य है शास्त्रों से ऐसा सुना गया है ।[**''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च''** ('ईश्वर रूपी निमित्त कारण से' प्रसंग यहाँ ईश्वर का था अहंकार या प्रकृति का नहीं, यहाँ अन्य उदाहरण देते तो ज्यादा अच्छा था)] इसी से उत्पन्न होता है प्राण-मन और सारी इंद्रियाँ **(मुण्ड ०२.१.३) ।। २०।।**

इंद्रियाँ भौतिक नहीं है ऐसा आपने कहा- फिर शास्त्र में ऐसा क्यों कहा-जो जीवात्मा शरीर छोड़के चला जाता है उसकी वाक् इंद्रिय अग्नि में चली जाती है, प्राण वायु में चला जाता है जो उसका चक्षु है वह सूर्य में चला जाता है मन चंद्रमा में और श्रोत्र इंद्रिय दिशाओं में चली जाती है, फिर इंद्रियों का लय भूतों में क्यों प्रतिपादित कर रहे हैं इससे तो ऐसा संकेत जाता है। क्योंकि ये भूतों में जा रहे है तो भूतों से ही बने होंगे ऐसी शंका होने पर इसका उत्तर देते हैं-

देवतालयश्रुतिर्नारम्भकस्य ।। २१।।

देवतालयश्रुतिर्नारम्भकस्य ।। २१ ।।

(देवतालयश्रुतिः-आरम्भकस्य न) अग्न्यादिदेवतासु खल्विन्द्रियाणां लयप्रदर्शिका श्रुतिरेषा न ह्यारम्भकत्वस्य। नोत्पादकत्वं भूतानामत्र लक्ष्यते, स्पष्टं ह्यत्र चन्द्रदिङ्नामतो देवतात्वमेषां लयस्थानानां नहि चन्द्रो दिग्वा पञ्चभूतेषु स्तः ।। २१ ।।

यदीन्द्रियाणि न भौतिकानि भूतेभ्यो नोत्पन्नानि तदा तानि नित्यानि मन्येरन् कुतो ह्यनित्यानि तानीत्याकांक्षायामुच्यते -

तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च* ।। २२ ।।

(तदुत्पत्तिश्रुतेः) तेषामिन्द्रियाणामुत्पत्तिविषयिकायाः श्रुतेः। ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च'' (मुण्ड ०२.१.३) (च) अथ च (विनाशदर्शनात्) तेषामिन्द्रियाणां विनाशोऽपि

सूत्रार्थ=दिव्य गुणों वाले अग्नि आदि जड़ देवताओं में इंद्रियों का लय बताने वाली श्रुति उनके उत्पादक कारण का निर्देश नहीं करती है।

[(देवतालयश्रुतिः-आरम्भकस्य न) अग्न्यादिदेवतासु खल्विन्द्रियाणां लयप्रदर्शिका श्रुतिरेषा न ह्यारम्भकत्वस्य] सिद्धांती कहते है- ये जो श्रुति आपने बतलाई यह तो देवताओं में इंद्रियों का लय दिखाने वाली श्रुति है (''देवताओं से इंद्रियाँ उत्पन्न हुई'' ऐसा नहीं बताया)। **[नोत्पादकत्वं भूतानामत्र लक्ष्यते]** इस श्रुति में ऐसा नहीं बताना चाहते कि भूत जो है वह इंद्रियों के उत्पादक हैं, **[स्पष्टं ह्यत्र चन्द्रदिङ्नामतो देवतात्वमेषां लयस्थानानां नहि चन्द्रो दिग्वा पञ्चभूतेषु स्तः]** श्रुति में ये स्पष्ट है चन्द्र और दिशा इन दो पदार्थ का लय स्थान ही स्पष्ट है श्रोत्र तो दिशाओं में चली गयी, मन चंद्रमा में चला गया ''अब दिशा और चन्द्रमा ये पाँच महाभूतों में तो है नहीं'' उसमें तो पृथ्वी-जल-वायु आदि आते हैं, जबकि इस प्रस्तुत कि गयी उक्ति में दिशाओं का भी नाम है, चंद्रमा का भी नाम है तो इससे पता चलता है कि ये तो देवताओं के अंदर लय बताया जा रहा है, अब देवता लय से क्या तात्पर्य है? वर्णोचरण शिक्षा में के वचन आता है- ''आत्मा बुद्धि से विचार करके बोलने कि इच्छा से मन को प्रेरित करता है मन जठराग्नि को धक्का मारता है'' तो यहा बोलने में अग्नि का सहयोग लेना पड़ता है जब बोलने वाला आत्मा शरीर से चला गया, तो बोलने के लिए जिस अग्नि का सहयोग ले रहा था वह सहयोग बंद हो गया वापिस चला गया'' इस अभिप्राय से वाणी को अग्नि में लय बता दिया ।। २१ ।।

पूर्वपक्षी एक शंका और उठाते हैं = यदि इंद्रियाँ भौतिक नहीं हैं, भूतों से उत्पन्न नहीं हुई तब फिर तो वह नित्य मानी जानी चाहिए, उनको अनित्य क्यों मानते हैं। इस आकाक्षा पर उत्तर देते हैं ।

तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च* ।। २२ ।।

सूत्रार्थ= इंद्रियों की उत्पत्ति सुनाई देने से और उनका विनाश भी देखे जाने से इंद्रियाँ अनित्य हैं।

[(तदुत्पत्तिश्रुतेः) तेषामिन्द्रियाणामुत्पत्तिविषयिकायाः श्रुतेः] उन इंद्रियों कि उत्पत्ति के विषय

दृश्यते तस्मादिन्द्रियाणि सन्त्यनित्यानि ।। २२।।

अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामधिष्ठाने ।। २३।।

(इन्द्रियम्-अतीन्द्रियम्) चक्षुरादीन्द्रियं खल्वतीन्द्रियं तद्भिन्नेन केनचिदपीन्द्रियेण नोपलभ्यम् (अधिष्ठाने भ्रान्तानाम्) गोलके गोलकात्मना खल्विन्द्रियमन्तव्यं भ्रान्तानां न तु वस्तुतः ।। २३।।

यदि गोलकं नेन्द्रियं तद्भिन्नमतीन्द्रियं तर्हि त्वेकमेवेन्द्रियं स्याद्भिन्नभिन्नबाह्याकाराभावात् । अत्रोच्यते -

शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकम् ।। २४।।

(अपि शक्तिभेदे-भेदसिद्धौ-एकं न) अपितु शक्तिभेदे सति-गन्धग्रहणशक्तिः, रसग्रहणशक्तिः,

---

में एक श्रुति है, उस श्रुति से ये बात जानी जाती है। [**''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च''**] इसी से उत्पन्न होता है प्राण-मन और सारी इंद्रियाँ [**(मुण्ड ०२.१.३) (च) अथ च (विनाशदर्शनात्) तेषामिन्द्रिया विनाशोऽपि दृश्यते तस्मादिन्द्रियाणि सन्त्यनित्यानि**] और उन इंद्रियों का विनाश भी दिखता है, वह भी शास्त्र में देखा जाता है इसलिए भी इंद्रियाँ अनित्य हैं।। २२।।

अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामधिष्ठाने ।। २३।।

सूत्रार्थ= नेत्र आदि इंद्रियाँ किसी भी इंद्रिय से देखि या जानी नहीं जा सकती, किन्तु इंद्रियों के गोलकों को इंद्रिय मानना भ्रांत व्यक्तियों की मान्यता है।

[**(इन्द्रियम्-अतीन्द्रियम्) चक्षुरादीन्द्रियं खल्वतीन्द्रियं तद्भिन्नेन केनचिदपीन्द्रियेण नोपलभ्यम्**] चक्षु आदि जो इंद्रिय हैं वो अतींद्रिय हैं उस इंद्रिय से भिन्न किसी भी इंद्रिय से न देखी जाती (अर्थात जो आँख इंद्रिय है उससे आप श्रोत्र इंद्रिय को नहीं देख सकते, श्रोत्र इंद्रिय से आँख को नहीं सुन सकते समझ सकते=इसलिए अतींद्रिय कहा) [**(अधिष्ठाने भ्रान्तानाम्) गोलके गोलकात्मना खल्विन्द्रियमन्तव्यं भ्रान्तानां न तु वस्तुतः**] ये जो आँख दिख रही है ये तो गोलक है इसके अंदर एक और शक्ति है जो इंद्रिय है, गोलक आदि को ही जो इंद्रिय मान लेता है ये तो भ्रांत इंद्रियों की मान्यता है (क्योंकि मरने के बाद ये १८ पदार्थ आत्मा के साथ चले जाएंगे जबकि गोलक तो नष्ट हो जाएंगे)।। २३।।

यदि ये गोलक इंद्रिय नहीं है और उससे भिन्न इंद्रिय हैं अतीन्द्रिय हैं दिखती भी नहीं है, तब तो फिर एक ही इंद्रिय होनी चाहिए बाह्य आकार तो उसका है नहीं? ऐसा तर्क उठाने पर सिद्धांती उत्तर देते हैं-

शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकम् ।। २४।।

सूत्रार्थ= जब शक्तियाँ अलग अलग हैं तो इंद्रियों में भेद सिद्ध हो जाता है, जब इंद्रियों में अनेकता सिद्ध हो जाती है फिर एक इंद्रिय नहीं मान सकते, भले ही बाह्य आकार अलग-अलग दिखाई दे।

रूपग्रहणशक्तिः, स्पर्शग्रहणशक्तिः, शब्दग्रहणशक्तिः, संकल्पधारणशक्तिरित्येवं शक्तिभेदे सति तेषामिन्द्रियाणां भेदसिद्धौ सत्यामिन्द्रियमेकं नास्ति ।। २४।।

पुनश्च -

न कल्पनाविरोधः प्रमाणदृष्टस्य ।। २५।।

(प्रमाणदृष्टस्य कल्पनाविरोधः-न) स्वस्वविषयग्रहणात्मकेन प्रत्यक्षेण प्रमाणेन दृष्टस्य भेदस्येन्द्रियानेकत्वस्य कल्पनया कृतो विरोधो न युक्तः । तस्मान्नैकमिन्द्रियं किन्तु यथोक्तान्येकादश सन्ति ।। २५।।

तेषु -

[(अपि शक्तिभेदे-भेदसिद्धौ-एकं न) अपितु शक्तिभेदे सति-गन्धग्रहणशक्तिः, रसग्रहणशक्तिः, रूपग्रहणशक्तिः, स्पर्शग्रहणशक्तिः, शब्दग्रहणशक्तिः, संकल्पधारणशक्तिरित्येवं शक्तिभेदे सति तेषामिन्द्रियाणां भेदसिद्धौ सत्यामिन्द्रियमेकं नास्ति] सिद्धांती कहते हैं आपके कहे अनुसार एक ही इंद्रिय होनी चाहिए, एक ही क्यों हो जब शक्तियाँ अलग-अलग हैं, गंध ग्रहण करने की शक्ति अलग है (सुगंध-दुर्गंध), फिर रस ग्रहण शक्ति (खट्टा-मीठा-तीखा ६ प्रकार के रस हैं), रूप ग्रहण शक्ति, स्पर्श करने की शक्ति, शब्द की शक्ति ये तो पाँच शक्तियाँ अलग है फिर मन की संकल्प धारण शक्ति अलग-अलग हैं, इस प्रकार से शक्ति का भेद सिद्ध होने से इंद्रियों का भेद सिद्ध हो जाता है, इसलिए एक इंद्रिय नहीं मान सकते।। २४।।

पुनश्च -

न कल्पनाविरोधः प्रमाणदृष्टस्य ।। २५।।

सूत्रार्थ= प्रत्यक्ष प्रमाणों से अनेक इंद्रियों के सिद्ध होने का कल्पना से विरोध करना उचित नहीं है।

[(प्रमाणदृष्टस्य कल्पनाविरोधः-न) स्वस्वविषयग्रहणात्मकेन प्रत्यक्षेण प्रमाणेन दृष्टस्य भेदस्येन्द्रियानेकत्वस्य कल्पनया कृतो विरोधो न युक्तः] अपने-अपने विषयों को ग्रहण करवाने वाले प्रत्यक्ष प्रमाण के माध्यम से जो भेद इंद्रियों का दिख रहा है, इस प्रकार से इंद्रियों के अनेक होने का कल्पना से विरोध करना ये ठीक नहीं है। **[तस्मान्नैकमिन्द्रियं किन्तु यथोक्तान्येकादश सन्ति]** इसलिए सार यह हुआ एक इंद्रिय नहीं है ११ इंद्रिय ही हैं और उन सबकी शक्तियाँ अलग-अलग है ।। २५।।

तेषु -

उभयात्मकञ्च मनः ।। २६।।

सूत्रार्थ= मन उभयात्मक है दोनों इंद्रियों के साथ मिलकर के कार्य करता है।

[(उभयात्मकं च मनः) मनस्तूभयात्मकं कर्मेन्द्रियज्ञानेन्द्रियानुगतमुभयत्रप्रवृत्तिम-दुभयप्रवृत्तिनिमित्तं स्वगुणेन वर्तमानं च] मन दोनों प्रकार का है उभयात्मक है ये कर्मेन्द्रियों के साथ तथा ज्ञानेन्द्रियों के साथ भी जुड़ता है दोनों के साथ क्रिया करता है (दोनों की क्रिया को प्रेरित करने वाला है)और इसका अपना गुण भी है विशेष संकल्प करना, विचार करना, स्मृतियों का संग्रह करना। **[उक्तं यथा**

उभयात्मकञ्च मनः ।। २६ ।।

(उभयात्मकं च मनः) मनस्तूभयात्मकं कर्मेन्द्रियज्ञानेन्द्रियानुगतमुभयत्रप्रवृत्तिमदुभयप्रवृत्तिनिमित्तं स्वगुणेन वर्तमानं च । उक्तं यथा ''एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्'' (मनु ०२.९२) ।। २६ ।।

तस्य स्वगुणेन वर्तमानत्वं विव्रियते -

गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत् ।। २७।।

(गुणपरिणामभेदात्-नानात्वम्-अवस्थावत्) सत्त्वरजस्तमसां गुणानां परिणामभेदात् खलु मनसो नानात्वं भवति-सात्त्विकं मनः, राजसं मनः, तामसं मनः। उक्तं च पूर्वमपि ''सात्त्विकमेकादशकं

''एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्'' (मनु ०२.९२)] जैसा मनुस्मृति में कहा है- ग्यारहवां पदार्थ मन को जानना चाहिए जो अपने गुण से विद्यमान है और उभयात्मक है ।। २६ ।।

मन जो अपने गुण से वर्तमान रहता है, उसका जो विशिष्ट गुण है। उसका विवरण देते हैं-

गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत् ।। २७।।

सूत्रार्थ= मन में सत्व आदि गुणों कि प्रधानता से तीन स्थितियाँ बदलती रहती हैं, जैसे शरीर में बाल्य यौवन आदि अवस्थाएं बदलती रहती हैं।

[(गुणपरिणामभेदात्-नानात्वम्-अवस्थावत्) सत्त्वरजस्तमसां गुणानां परिणामभेदात् खलु मनसो नानात्वं भवति-सात्त्विकं मनः, राजसं मनः, तामसं मनः] क्योंकि मन तीन गुणों से मिलकर बना है इसके उपदान कारण ये तीन है सत्व, रज और तम। इसीलिए परिणामों में भेद होने से मन अलग-अलग प्रकार का बन जाता है जिससे मन कभी सात्विक कभी राजसिक तो कभी तामसिक हो जाता है (मन के परिणामों में भेद होने से ऊंची नीची स्थिति होती रहती है, मन में सत्वगुण की प्रधान से सेवा, परोपकार, दया, दान की भावना सहयोग की भावना जब मन रजोगुण से युक्त होगा तो स्वार्थ की भावना आएगी चंचलता आएगी राग द्वेष की भावना आएगी, तमोगुण के उभरने पर निम्न स्तर के विचार आएंगे)। **[उक्तं च पूर्वमपि ''सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्तते वैकृतादहंकारात्'']** जैसा की पहले भी कहा था - कि सत्व प्रधान अहंकार से सत्व प्रधान मन कि उत्पत्ति होती है (मन का निर्माण एक बार ही होता है और वह सत्व प्रधान होता है) **[(सांख्य ०२.१८) तच्च मनसो नानात्वं भवति यथा देहस्य बाल्ययौवनजरारूपमवस्थात्रयम्]** मन कि स्थितियाँ कैसी होती है उसको उदाहरण से समझा रहे हैं जैसे एक ही शरीर में तीन अवस्थाएं बदलती हैं, पहले बाल्य, यौवन फिर वृद्धावस्था उसी प्रकार से एक ही मन में कभी सात्विक, कभी राजसिक तो कभी तामसिक अवस्था होती रहती है। **[विज्ञानभिक्षुभाष्ये सूत्रमिदमन्यथार्थापितं मनोविषयकाष्टादशतमात् सूत्राद् विरुद्धं च]** विज्ञानभिक्षु भाष्य में इस सूत्र का अर्थ अलग ढँग से किया गया है और मन विषयक जो १८वा सूत्र था उससे भी विरुद्ध अर्थ किया गया है, यतस्तत्र मनसि गुणत्रयस्य स्वीकारः कृतस्तेनापि क्योंकि

प्रवर्तते वैकृतादहंकारात्'' (सांख्य ०२.१८) तच्च मनसो नानात्वं भवति यथा देहस्य बाल्ययौवनजरारूपमवस्थात्रयम्। विज्ञानभिक्षुभाष्ये सूत्रमिदमन्यथार्थापितं मनोविषयकाष्टादशतमात् सूत्राद् विरुद्धं च, यतस्तत्र मनसि गुणत्रयस्य स्वीकारः कृतस्तेनापि, तेषामेव गुणानां परिणामादत्रापि मनसस्त्रैविध्यमनुसन्धेयम्। मनःसृष्टिप्रकरणादेवात्र तत्कथनम् ।। २७।।

मनसो धर्मवर्णनान्तरमिन्द्रियाणां धर्माः प्रदर्श्यन्ते -

रूपादिरसमलान्त उभयोः ।। २८ ।।

(उभयोः-रूपादिरसमलान्तः) ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिययोः खलु रूपमादौ रसमलोऽन्ते यस्य स

अठारहवे सूत्र में मन के तीन गुण स्वीकार किए गए हैं, **[तेषामेव गुणानां परिणामादत्रापि मनसस्त्रैविध्यमनुसन्धेयम्]** तो जब तीन गुणों को वहाँ स्वीकार किया गया है मन में तो फिर उसी आधार पर यहां मन में भिन्नता स्वीकार करनी चाहिए कि एक ही मन में गुणों का परिणाम बदलने से स्थितियाँ बदलती रहती हैं। **[मनःसृष्टिप्रकरणादेवात्र तत्कथनम्]** मन कि रचना प्रकरण से भी यहाँ पर उस प्रकार का कथन किया गया है।। २७।।

मन के धर्मों का वर्णन करने के पश्चात् इंद्रियों के धर्म दिखलाए जाते हैं -

रूपादिरसमलान्त उभयोः ।। २८ ।।

सूत्रार्थ= रूप ग्रहण से लेकर के मल विसर्जन पर्यंत दोनों प्रकार के कार्य इंद्रियों के हैं।

[(उभयोः-रूपादिरसमलान्तः) ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिययोः खलु रूपमादौ रसमलोऽन्ते यस्य स रूपादिरसमलान्तो गुणगणः] ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्दियों के समुदाय में रूप आदि में है और रस का मल अंत में हैं एसे गुणों का जो समुदाय है उसको कहेंगे रूपादिरसमलान्त। **[रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चक्षुरादीनां ज्ञानेन्द्रियाणां भाषणादानगमनानन्दपुरीषाणि कर्मेन्द्रियाणाम्]** रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गन्ध ये चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों के कार्य और बोलना, देना, जाना, आनन्द (मूत्रेन्द्रिय) पुरीष (मलेन्द्रिय) ये पाँच कर्मेन्द्रियों के कार्य है। **[रसमलोऽत्र भोजनरसस्य मलः पुरीषमित्यर्थः]** सूत्र में जो रस मल शब्द आया है वह भोजन से जो रस रक्त आदि धातुए बनती हैं तो वहाँ जो रस से मल बनता है उससे तात्पर्य है ।। २८।।

जिसकी ये इंद्रियाँ हैं (जो इनका प्रयोग करने वाला है) उस जीवात्मा के प्रति इन इंद्रियों का सम्बंध है और उन इंद्रियों के प्रति उस प्रयोक्ता (जीवात्मा का) क्या प्रयोजन है (इंद्रियों का और आत्मा का आपस में क्या संबंध है ये बताया जाएगा)-

द्रष्टत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम् ।। २९।।

रूपादिरसमलान्तो गुणगणः ।रूपरसगन्धस्पर्शशब्दाश्चक्षुरादीनां ज्ञानेन्द्रियाणां भाषणादानगमनानन्दपुरीषाणि कर्मेन्द्रियाणाम् । रसमलोऽत्र भोजनरसस्य मलः पुरीषमित्यर्थः ।। २८।।

यस्य खल्विन्द्रियाणि तं प्रति तेषां तथा तानि प्रति च तस्य रूपादिग्रहणे परस्परसम्बन्धः प्रदर्श्यते -

द्रष्टृत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम् ।। २९।।

(आत्मनः-द्रष्टृत्वादिः) रूपादिविषयग्रहणे किलेन्द्रियाणि प्रति द्रष्टृत्वादिः सम्बन्ध आत्मनोऽस्ति (इन्द्रियाणां करणत्वम्) आत्मानं प्रति रूपादिग्रहणे करणत्वमिन्द्रियाणां सम्बन्धोऽस्ति । तत्र रूपग्रहणे द्रष्टाऽऽत्मा दर्शनकरणं चक्षुः, रसग्रहणे रसयिताऽऽत्मा रसनकरणं जिह्वा, गन्धग्रहणे घ्राताऽऽत्मा घ्राणकरणं

सूत्रार्थ= आत्मा का जो सम्बंध है वह है दृष्टा, श्रोता, घ्राता, वक्ता आदि और जो इंद्रियाँ है वो करण (साधन) हैं।

[**(आत्मनः-द्रष्टृत्वादिः) रूपादिविषयग्रहणे किलेन्द्रियाणि प्रति द्रष्टृत्वादिः सम्बन्ध आत्मनोऽस्ति**] जब जीवात्मा रूपादि विषयों का ग्रहण करेगा इस व्यवहार में इंद्रियों के प्रति (साथ) आत्मा का जो संबंध है वह दृष्टा का है [**(इन्द्रियाणां करणत्वम्) आत्मानं प्रति रूपादिग्रहणे करणत्वमिन्द्रियाणां सम्बन्धोऽस्ति**] इंद्रियों का जो सम्बंध है आत्मा के साथ वह करण (साधन) का है । [**तत्र रूपग्रहणे द्रष्टाऽऽत्मा दर्शनकरणं चक्षुः**] रूप का ग्रहण करना होगा तब आत्मा होगा दृष्टा और देखने का रूप ग्रहण करने का साधन होगा नेत्र, [**रसग्रहणे रसयिताऽऽत्मा रसनकरणं जिह्वा**] रस ग्रहण करने में आत्मा होगा रसयिता और रस को ग्रहण करने में जो साधन होगा वह होगा रसना, [**गन्धग्रहणे घ्राताऽऽत्मा घ्राणकरणं नासिका**] सूंघने वाला आत्मा है और सूंघने का साधन नासिका है, [**स्पर्शग्रहणे स्प्रस्ष्टाऽऽत्मा स्पर्शकरणं त्वक्**] स्पर्श ग्रहण करने में छूने वाला आत्मा है और छूने का साधन त्वक् इंद्रिय है, [**शब्दग्रहणे श्रोताऽऽत्मा शब्दकरणं श्रोत्रम्**] शब्द सुनने में श्रोता आत्मा है और सुनने का साधन कान हैं। [**भाषणे वक्ताऽऽत्माभाषणकरणं वाक्**] बोलने में बोलने वाला आत्मा है और बोलने का साधन वाक् है, [**आदाने आदाताऽऽत्माऽऽदानकरणं हस्तः**] लेन-देन करने में लेन-देन करने वाला आत्मा है और लेन-देन करने का साधन हाथ है, [**गमने गन्ताऽऽत्मा गमनकरणं पाद इत्यादि योजनीयम्**] एसे ही आने-जाने में गमन करने वाला आत्मा है और गमन करने का साधन पाद (पैर) हैं इस प्रकार से सब जगह समझ लेना चाहिए ।। २९।।

करणों के प्रकरण में आगे है-

त्रयाणां स्वालक्षण्यम् ।। ३०।।

सूत्रार्थ= तीन अंत:करणों का अपने-अपने लक्षणों से ही कर्णत्व समझ लेना चाहिए।

[**(त्रयाणां स्वालक्षण्यम्) करणत्वमनुवर्तते**] ये सब करण है ये अनुव्रत्ति है। [**त्रयाणां पूर्वोक्तानां**

नासिका, स्पर्शग्रहणे स्प्रष्टाऽऽत्मा स्पर्शकरणं त्वक् , शब्दग्रहणे श्रोताऽऽत्मा शब्दकरणं श्रोत्रम्। भाषणे, वक्ताऽऽत्माभाषणकरणं वाक्, आदाने आदाताऽऽत्माऽऽदानकरणं हस्तः, गमने गन्ताऽऽत्मा गमनकरणं पाद इत्यादि योजनीयम् ।। २९।।

अपरञ्च करणप्रकरणे -

त्रयाणां स्वालक्षण्यम् ।। ३०।।

(त्रयाणां स्वालक्षण्यम्) करणत्वमनुवर्तते। त्रयाणां पूर्वोक्तानां बुद्ध्यहंकारमनसां स्वालक्षण्यं **बुद्ध्यहंकारमनसां स्वालक्षण्यं स्वालक्षणिकं करणत्वं स्वस्वलक्षणेन निर्वृत्तं करणत्वं विज्ञेयम्]** तीन जो पूर्वोक्त अंतकरण बताए थे बुद्धि अहंकार और मन इन तीनों का लक्षण जानना चाहिए अपने अपने लक्षण से उत्पन्न कर्णत्व, इनका जो संस्कृत व्याकरण से लक्षण सिद्ध होता है उसी से इनका कार्य व्यवसाय भी समझ लेना। **[निर्वृत्तार्थस्तद्धितः ष्यञ् प्रत्यय आर्षः]** अब इसमें ष्यन् प्रत्यय का प्रयोग है ये आर्ष प्रयोग है उत्पत्ति अर्थ में। यद्वा स्वालक्षण्यं स्वस्वलक्षणं करणत्वेनास्ति अथवा स्वाल्क्षण्यम् को हम इस तरह से भी कह सकते हैं उनके करणपन से (इंद्रियत्व से) ही उनमें अपने-अपने लक्षण सिद्ध होता है (बुद्धि, अहंकार और मन उनके करण होने से उनमे अपना लक्षण सिद्ध हो जाता है), **[ष्यञ् स्वार्थे]** यहाँ स्वार्थ में ष्यन् प्रत्यय है। **[तेषां बुद्ध्यहंकारमनसां स्वस्वलक्षणम्-अध्यवसायोऽहङ्कृतिः संकल्पः करणत्वेन पृथक्-पृथगस्ति]** इन तीनों करणों का बुद्धि अहंकार और मन का अपना अपना लक्षण ये है, जिससे निश्चय होता है वह बुद्धि है अहं मै की अनुभूति कराता है और मन संकल्प कराता है करण के रूप में जो इनके कार्य है बो पृथक्-पृथक् हैं। **[अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रमिदमन्यथाव्याख्यातं तत्रोभयत्र वैधर्म्यप्रदर्शनपरं सूत्रं योजितं न हि वैधर्म्यस्य प्रकरणं किन्तु प्रकरणं तु करणत्वस्य तथैवार्थेन भवितव्यम्]** अनिरुद्ध वृत्ति में और विज्ञान भिक्षु भाष्य में इस सूत्र की व्याख्या अलग ढँग से की गयी है जो ठीक नहीं है, वहाँ उन दोनों की व्याख्या में इस सूत्र की जो योजना की गयी है विरोध दिखलाते हुए उन्होंने सूत्र की व्याख्या की है जो गले है क्योंकि यहाँ वैधर्म्य दिखलाने का प्रकरण नहीं चल रहा (कि इनमे विरोध क्या है) प्रसंग तो यह है कि ये करण (साधन) है जैसा प्रसंग था वैसा ही अर्थ करना चाहिए था ।। ३०।।

सामान्या करणवृत्तिः प्राणाख्याः प्राणाद्याः वायवः पञ्च ।। ३१।।

सूत्रार्थ= शरीर में पाँच प्रकार की वायु प्राण-अपान आदि नाम से हैं, इन पांचों प्राणों का सहयोग समान रूप से सभी तेरह कारणों को मिलता है।

[(सामान्या करणवृत्तिः) करणानामुपर्युक्तसूत्रद्वये कथितानां ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिय-बुद्ध्यहंकारमनसां त्रयोदशानां * करणानां वृत्तिः सामान्या करणत्वव्यापारनिमित्तं सामान्यम्] तेरह करणों में एक समानता है कि वह सब करण (साधन) है , इन तेरह करणों कि जो वृत्ति है वो सामान्य (समान) है ज्ञानेंद्रिय-कर्मेन्द्रियों बुद्धि आदि तेरह करण जीवात्मा के साधन बन कर कार्य करते हैं **[(प्राणाख्याः पञ्च वायवः) ये खलु प्राणनामकाः प्राणापानव्यानसमानोदानाः पञ्च वायवः शरीरे वर्तमानाः सन्ति तैर्वायुभूतैः**

स्वालक्षणिकं करणत्वं स्वस्वलक्षणेन निर्वृत्तं करणत्वं विज्ञेयम्। निर्वृत्तार्थस्तद्धितः ष्यञ् प्रत्यय आर्षः। यद्वा स्वालक्षण्यं स्वस्वलक्षणं करणत्वेनास्ति, ष्यञ् स्वार्थे। तेषां बुद्ध्यहंकारमनसां स्वस्वलक्षणम्-अध्यवसायोऽहङ्कृतिः संकल्पः करणत्वेन पृथक्-पृथगस्ति। अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च सूत्रमिदमन्यथाव्याख्यातं तत्रोभयत्र वैधर्म्यप्रदर्शनपरं सूत्रं योजितं न हि वैधर्म्यस्य प्रकरणं किन्तु प्रकरणं तु करणत्वस्य तथैवार्थेन भवितव्यम् ।। ३०।।

अथ च -

सामान्या करणवृत्तिः प्राणाख्याः प्राणाद्याः वायवः पञ्च ।। ३१ ।।

(सामान्या करणवृत्तिः) करणानामुपर्युक्तसूत्रद्वये कथितानां ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रिय बुद्ध्यहंकारमनसां त्रयोदशानां * करणानां वृत्तिः सामान्या करणत्वव्यापारनिमित्तं सामान्यम् (प्राणाख्याः पञ्च वायवः) ये खलु प्राणनामकाः प्राणापानव्यानसमानोदानाः पञ्च वायवः शरीरे वर्तमानाः सन्ति तैर्वायुभूतैः पञ्चभिः प्राणैस्तेषां सर्वेषां ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियबुद्ध्यहंकारमनसां करणानां वृत्तिः प्रभवति, उक्तं हि प्रश्नोपनिषदः

पञ्चभिः प्राणैस्तेषां सर्वेषां ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियबुद्ध्यहंकारमनसां करणानां वृत्तिः प्रभवति] ये जो प्राण नामक पाँच वायु हैं शरीर में उनके नाम बताए प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इस प्रकार से पाँच वायु शरीर में जो वर्तमान हैं उन वायु भूत पाँच प्राणों के माध्यम से इन सब ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, बुद्धि, अहंकार और मन जो करण हैं इनकि वृत्ति उत्पन्न होती है (अर्थात इनका जो कार्य है वह प्रभावित होता है), **[उक्तं हि प्रश्नोपनिषदः प्राणेन्द्रियमनसामहंश्यसि विवादप्रकरणे प्राणाधारकत्वं करणानाम्]** इस बात कि पुष्टि के लिए प्रमाण प्रस्तुत करते है कि प्रश्नोपनिषद् में एक बार चर्चा आई प्राण और इंद्रियों का विवाद हो गया (इंद्रिय में एक-एक कहने लगे हम श्रेष्ठ हैं, निष्कर्ष ये निकला यदि एक इंद्रिय कि कमी शरीर में हो भी जाए तो जीवन चल सकता है किन्तु प्राण निकाल गए तो सबके लिए मुश्किल हो जाएगी) उस प्रकरण में ये सिद्ध हुआ कि प्राण सबसे श्रेष्ठ मूल्यवान है।**[''या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि। या च मनसि * संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः'']**(कथा में इस प्रकार से था कि आँख एक वर्ष के लिए चली गई देखते हैं मेरे वगैर कैसे जीते हैं, जब आँख लौट के आई तो देखा सब कम ठीक चल रहा है तो अन्य इंद्रियों से पूछने लगे मेरे वगैर कैसे जीवित हो तो उन्होने कहाँ जैसे अंधे लोग जीते हैं वैसे हमने भी जी लिया, तो नेत्र इंद्रिय को समझ में आ गया मेरी कितनी कीमत है। एसे ही कान चला गया जब वह लौट के आया तो पूछा मेरे बिना तुम्हारा कैसे काम चला,अन्य बोले जैसे बहरे का चलता है हमारा भी चल गया, एसे बारी-बारी से सब इंद्रियाँ चली गयी और बाद में लौटी तो सबके बिना भी काम चल रहा था, अब जब आखिर में प्राण का नंबर आया उसने चलने कि तैयारी की तो सब इंद्रियाँ कहने लगी रुको आप ही श्रेष्ठ हो) हे प्राण जो तुम्हारा स्वरूप वाणी में, श्रोत्र में, चक्षु में, मन में स्थित है, उसको शांत करो बाहर मत निकलो, इसी तरह से सब इंद्रियों ने कहा आप बाहर मत निकलिए **[(प्रश्नो ०२.१२) इन्द्रियमनोभ्यः प्रागुत्पत्तिश्च प्राणस्य दर्श्यते ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः+ सर्वेन्द्रियाणि च'']** और मन इंद्रियों से पहले प्राण कि उत्पत्ति दिखलाई गयी है (इस श्लोक कि संगति ठीक नहीं है इसे छोड़ देते हैं) **[(मुण्डको ०२.१.३) अतः प्राणानां करणवृत्तित्वं सामान्यम्]** इसलिए प्राणों का जो सहयोग है वो सब इंद्रियों के लिए समान है ।**[अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च प्राणानां करणत्वप्रदर्शनप्रकरणाद् विरुद्धं व्याख्यातं सूत्रमिदम्]** अनिरुद्ध वृत्ति में और

प्राणेन्द्रियमनसामहंश्यसि विवादप्रकरणे प्राणाधारकत्वं करणानाम् । ''या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि । या च मनसि * संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः'' (प्रश्नो ०२.१२) इन्द्रियमनोभ्यः प्रागुत्पत्तिश्च प्राणस्य दर्श्यते ''एतस्माज्जायते प्राणो मनः+ सर्वेन्द्रियाणि च'' (मुण्डको ०२.१.३) अतः प्राणानां करणवृत्तित्वं सामान्यम् । अनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च प्राणानां करणत्वप्रदर्शनप्रकरणाद् विरुद्धं व्याख्यातं सूत्रमिदम् ।। ३१ ।।

तत्र करणेषु -

क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः ।। ३२ ।।

(इन्द्रियवृत्तिः) पूर्वोक्तानां मनःसहितैकादशेन्द्रियाणां वृत्तिः (क्रमशः-अक्रमशः-च) क्रमश एकैकेन्द्रियस्यैककविषये तथाऽक्रमशश्च सकृतनेकेन्द्रियद्वारानेकविषयेऽपि भवति यथावसरं

विज्ञान भिक्षु भाष्य में प्राणों का कर्णत्व प्रदर्शन से इस सूत्र कि व्याख्या विरुद्ध की है।। ३१ ।।

क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः ।। ३२ ।।

सूत्रार्थ=जो इंद्रियों के व्यवहार होते है कहीं धीमे क्रम से होते हैं कहीं तेज क्रम से होते हैं।

[**(इन्द्रियवृत्तिः) पूर्वोक्तानां मनःसहितैकादशेन्द्रियाणां वृत्तिः**] पहले जो मन सहित ग्यारह इंद्रियाँ बतलाई उनके कार्य को कहते हैं [**(क्रमशः-अक्रमशः-च) क्रमश एकैकेन्द्रियस्यैककविषये तथाऽक्रमशश्च सकृतनेकेन्द्रियद्वारानेकविषयेऽपि भवति यथावसरं शैघ्र्याद् भयादभ्यासाद्वा**] (इनका कार्य धीमे क्रम से भी होता है और तेज क्रम से भी) एक-एक इंद्रिय का एक-एक विषय में ज्ञान होता है क्रिया होती है और बिना क्रम से अर्थात् एक साथ अनेक इंद्रियों द्वारा अनेक विषयों में उनका व्यापार हो जाता है चाहे वह अवसर के अनुसार शीघ्रता से, कहीं भय से, कहीं अभ्यास से जो कार्य होता है वह क्रम से ही होता है ।। ३२ ।।

अब वृत्तियों के भेद कहे जाते हैं-

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाश्च ।। ३३ ।।

सूत्रार्थ=वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं, क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेद से।

[**(वृत्तयः पञ्चतय्यः) ता वृत्तयः पञ्चस्तरकाः पञ्चविधाः सन्ति**] वे वृत्तियाँ पाँच स्तर की हैं पाँच प्रकार की है, [**(क्लिष्टाः-अक्लिष्टाः-च) अथ ता एव पञ्चविधा वृत्तयः क्लिष्टाश्चाक्लिष्टाश्चापि भवन्ति**] वे ही पाँच प्रकार की वृत्तियाँ क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों प्रकार की होती हैं। [**वृत्तीनां पञ्चविधत्वं योगसूत्राद् विज्ञेयं तत्र ''प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः''**] वृत्तियाँ जो पाँच प्रकार की हैं वो योगदर्शन के सूत्र से जान लेनी चाहिए, वहाँ प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच वृत्तियाँ बतलाई गयी हैं, [**(योग ० १.६) क्लेशमूलाः क्लिष्टाः संसाराभिमुखास्तद्भिन्ना ख्यातिविषया विवेकाभिमुखा अक्लिष्टा**] क्लेश है मूल जिनका (क्लेशों के कारण जो उत्पन्न होती है) वे क्लिष्ट वृत्तियाँ हैं ये संसार की ओर ले जाने वाली है

शैर्घ्याद्भयादभ्यासाद्वा ।। ३२।।

वृत्तिभेदा उच्यन्ते -

वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाश्च ।। ३३।।

(वृत्तयः पञ्चतय्यः) ता वृत्तयः पञ्चस्तरकाः पञ्चविधाः सन्ति (क्लिष्टाः-अक्लिष्टाः-च) अथ ता एव पञ्चविधा वृत्तयः क्लिष्टाश्चाक्लिष्टाश्चापि भवन्ति। वृत्तीनां पञ्चविधत्वं योगसूत्राद् विज्ञेयं तत्र ''प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः'' (योग ०१.६) क्लेशमूलाः क्लिष्टाः संसाराभिमुखास्तद्भिन्ना ख्यातिविषया विवेकाभिमुखा अक्लिष्टा ।। ३३।।

पुनः -

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ।। ३४।।

(तन्निवृत्तौ) वृत्तिनिवृत्तौ सत्याम्(उपशान्तोपरागः) उपशान्त उपरागोऽभिसम्बन्धो यस्य तथाविधः

(बंधन राग-द्वेष की ओर प्रवृत्त करने वाली है) उनसे भिन्न ख्याति विषय वाली (तत्वज्ञान विषय वाली) वृत्तियाँ विवेक-वैराग्य की ओर ले जाती हैं, वो अक्लिष्टा वृत्तियाँ है।। ३३।।

तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः ।। ३४।।

सूत्रार्थ= वृत्तियों के रुक जाने पर भौतिक वस्तुओं से संबंध टूट जाता है, और जीवात्मा अपने का (स्वयं) अनुभव करने लगता है।

[(तन्निवृत्तौ) वृत्तिनिवृत्तौ सत्याम् (उपशान्तोपरागः) उपशान्त उपरागोऽभिसम्बन्धो यस्य तथाविधः पुरुषः (स्वस्थः) स्वस्मिन् स्थितः स्वरूपतः शुद्धो भवति] उन पाँच वृत्तियों के निवृत्त हो जाने पर सांसारिक वस्तुओं से हमारा संबंध शांत (नष्ट) हो जाएगा, इस तरह का जीवात्मा हो जाएगा जिसका सांसारिक वस्तुओं से संबंध टूट जाएगा केवल ईश्वर से संबंध जुड़ा रहेगा, फिर वह स्वस्थ स्वयं में स्थित स्वरूप से शुद्ध हो जाएगा (अर्थात जीवात्मा अपने को ठीक-ठीक जान लेगा)।। ३४।।

कुसुमवच्च मणिः ।। ३५।।

सूत्रार्थ=फूल के आश्रय में स्फटिक मणि के समान जीवात्मा वृत्तियों से सम्बद्ध हो जाने पर वृत्तियों जैसा तथा वृत्तियों से रहित होने पर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है।

[(कुसुमवत्-च मणिः) कुसुमवत्-चकारादकुसुमवदपि] कुसुम के समान और बिना कुसुम के समान। **[अत्र वत्प्रत्ययेन]** सप्तम्यामुपमा तो यहाँ वत प्रत्यय में सप्तमी विभक्ति में उपमा का प्रयोग किया गया है। **[यथा जपाकुसुमे जपाकुसुमाश्रये मणिस्तदुपरागवान् भवति पुनश्चाकुसुमवत्-जपाकुसुमाश्रयापगतः स्फटिको मणिः स्वरूपतः शुद्धोऽवतिष्ठते तथा पुरुषोऽपि वृत्तेरुपरागादक्तस्तन्निवृत्तौ शुद्धः स्वस्थो भवति]** जैसे जपा कुसुम में अर्थात् जपा कुसुम के आश्रय में (जपा कुसुम (गुड़हल) एक फूल होता है) एक मणि रख दी जाए लाल (कोई चमकीली वस्तु) वो उससे सम्बद्ध होकर वैसी ही दिखाई देती है (उसी रंग

पुरुषः (स्वस्थः) स्वस्मिन् स्थितः स्वरूपतः शुद्धो भवति ।। ३४।।

स च -

कुसुमवच्च मणिः ।। ३५।।

(कुसुमवत्-च मणिः) कुसुमवत्-चकारादकुसुमवदपि। अत्र वत्प्रत्ययेन सप्तम्यामुपमा । यथा जपाकुसुमे जपाकुसुमाश्रये मणिस्तदुपरागवान् भवति पुनश्चाकुसुमवत्-जपाकुसुमाश्रयापगतः स्फटिको मणिः स्वरूपतः शुद्धोऽवतिष्ठते तथा पुरुषोऽपि वृत्तेरुपरागाद्रक्तस्तन्निवृत्तौ शुद्धः स्वस्थो भवति ।।३५।।

करणानां वृत्तिसम्बन्धः कथं पुरुषेण सह प्रवृत्त इत्यत्रोच्यते -

पुरुषार्थं करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ।। ३६ ।।

(करणोद्भवः पुरुषार्थम्) करणोद्भवः खलु पुरुषार्थः पुरुषप्रयोजनाय (अपि-अदृष्टोल्लासात्)

वाली प्रतीत होती है जिस रंग का फूल था) जब उस फूल के आश्रय से स्फटिक मणि को हटा दिया जाता है तो पुनः अपने स्वरूप से शुद्ध जो जाती है, तो उस चमकीली वस्तु के समान ही जीवात्मा (मणि) वृत्ति (जपाकुसुम) के समान स्वयं को समझने लगता है, और जब वृत्तियाँ समाप्त हो जाती है तो वह अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है (शुद्ध हो जाता है) ।। ३५ ।।

करणों का जो व्यवहार करने का संबंध है, पुरुष के साथ वह कैसे आता है? इस विषय में कहते हैं-

पुरुषार्थं करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ।। ३६ ।।

सूत्रार्थ= तेरह करण नेत्रादि की उत्पत्ति जीवात्मा के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए हुई हैं, संचित कर्मों के फल देने के लिए तैयार हो जाने से।

[(करणोद्भवः पुरुषार्थम्) करणोद्भवः खलु पुरुषार्थः पुरुषप्रयोजनाय (अपि-अदृष्टोल्लासात्) अदृष्टस्य भोगोन्मुखत्वात् सम्भवति] करणों की जो उत्पत्ति हुई वह पुरुष के प्रयोजन (भोग और अपवर्ग) को सिद्ध करने के लिए है, अदृष्ट (पूर्वकृत कर्म वह सकाम भी हो सकते हैं निष्काम भी) कर्म भोग कराने के लिए (कर्मों के फल प्रदान करने के लिए) करण तैयार करके दिये ईश्वर ने।। ३६ ।।

यथा -

धेनुवद् वत्साय ।। ३७।।

सूत्रार्थ= जैसे गायें बछड़े को दूध पिलाती है वैसे ही इंद्रियाँ जीवात्मा को कर्म फल भोगवाने के लिए तैयार रहती है।

[(वत्साय धेनुवत्) वत्साय यथा धेनुः प्रवर्तते दुग्धं स्रावयितुं तथैव करमं प्रवर्तते पुरुषायादृष्टभोगं प्रदातुम्] जैसे गाय अपने बछड़े को दूध पिलाती है एसे ही ये जो करण इंद्रियाँ है ये गाय के समान है और जीवात्मा बछड़ों के समान है वैसे ही ये इंद्रियाँ जीवात्मा का कर्मफल भुगाती हैं ।। ३७।।

अदृष्टस्य भोगोन्मुखत्वात् सम्भवति ।। ३६।।

यथा -

धेनुवद् वत्साय ।। ३७।।

(वत्साय धेनुवत्) वत्साय यथा धेनुः प्रवर्तते दुग्धं स्त्रावयितुं तथैव करणंप्रवर्तते पुरुषायादृष्टभोगं प्रदातुम् ।। ३७।।

तच्च -

करणं त्रयोदशविधमवरान्तरभेदात् ।। ३८।।

(करणं त्रयोदशविधम्) करणं खलु यस्योद्भवः पुरुषार्थस्तत् त्रयोदशविधं त्रयोदशप्रकारकमस्ति। कुतः (अवरान्तरभेदात्) बहिरन्तरभेदाद् बाह्याभ्यन्तरभेदात्। तत्र बुद्ध्यहंकारमनांसि त्वभ्यन्तराणि त्रीणि

करणं त्रयोदशविधमवरान्तरभेदात् ।। ३८।।

सूत्रार्थ= करण तेरह प्रकार के है अवरांतर भेद से, दश बाहरी एवं तीन आंतरिक होने से।

[(करणं त्रयोदशविधम्) करणं खलु यस्योद्भवः पुरुषार्थस्तत् त्रयोदशविधं त्रयोदशप्रकारकमस्ति] करण जिसकी उत्पत्ति पुरुष के प्रयोजन के लिए हुई है वे कुल तेरह प्रकार के हैं। **[कुतः (अवरान्तरभेदात्) बहिरन्तरभेदाद् बाह्याभ्यन्तरभेदात्]** (तेरह करण है उनके दो भेद कर दिये) कुछ बाह्य करण है कुछ आंतरिक करण हैं। **[तत्र बुद्ध्यहंकारमनांसि त्वभ्यन्तराणि त्रीणि करणानि किलान्तःकरणानि]** तेरह में से बुद्धि, अहंकार, मन ये तीन आभ्यंतर करण हैं, इनको निश्चय से अंतःकरण कहा जाता है, **[चक्षुर्वागादीनितु दशेन्द्रियाणि करणानि बहिष्करणानि खलूच्यन्ते]** चक्षु आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय और वाक् आदि पाँच कर्मेन्द्रिय कुल मिलकर दश इंद्रियाँ है ये बाहर कार्य करती हैं। **[इत्थं सर्वाणि करणानि पुरुषार्थानि त्रयोदश]** इस प्रकार से सारे के सारे करण पुरुष के प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए हैं ।**[अवान्तरपाठे तु (अवान्तरभेदात्) मनसोऽवान्तरभेदाद् रूपान्तरभेदात्]** (सूत्र में कहीं -कहीं पाठ भेद है), **[त्रैविध्यं बुद्ध्यहंकारमनोरूपमन्तःकरणं तस्मात्]** अवांतर पाठ भेद होगा तो इस प्रकार से अर्थ करेंगे- मन के अवांतर भेद होने से अर्थात रूपांतर भेद होने से वो तीन प्रकार का है बुद्धि अहंकार और मनरूपी अन्तःकरण , **[यद्वाऽत्र, अवान्तरशब्दो नानार्थः]** अथवा यहाँ अवांतर का अर्थ कर लेंगे अनेक (अवांतर शब्द अनेक अर्थ को बताने वाला है), **[करणानां नानाभेदात्]** करण भिन्न-भिन्न प्रकार के है इसलिए तेरह प्रकार के करण हुए ।। ३८।।

इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात्* कुठारवत् ।। ३९।।

सूत्रार्थ= इंद्रियों में साधकतम इस गुण का योग होने से इंद्रियाँ करण कहलाती है, कुल्हाड़े के समान।

[(इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात्) इन्द्रियेषु साधकतमत्वसंसर्गात् तानि करणानि (कुठारवत्)

करणानि किलान्तःकरणानि, चक्षुर्वागादीनि तु दशेन्द्रियाणि करणानि बहिष्करणानि खलूच्यन्ते। इत्थं सर्वाणि करणानि पुरुषार्थानि त्रयोदश । अवान्तरपाठे तु (अवान्तरभेदात्) मनसोऽवान्तरभेदाद् रूपान्तरभेदात्, त्रैविध्यं बुद्ध्यहंकारमनोरूपमन्तःकरणं तस्मात्, यद्वाऽत्र, अवान्तरशब्दो नानार्थः, करणानां नानाभेदात् ।। ३८ ।।

परन्तु -

इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात्* कुठारवत् ।। ३९ ।।

(इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात्) इन्द्रियेषु साधकतमत्वसंसर्गात् तानि करणानि (कुठारवत्) यथा छिदायां प्रहरतो हस्तस्य संसर्गात् प्रहरन् सन् कुठारः करणत्वभाग भवति ।। ३९ ।।

पुनश्च -

यथा छिदायां प्रहरतो हस्तस्य संसर्गात् प्रहरन् सन् कुठारः करणत्वभाग भवति] इंद्रिय में एक गुण है वो साधकतम (किसी कार्य की संपन्नता में कोई महत्वपूर्ण वस्तु हो जिसके बगैर काम ही न चले वह साधकतम है) ''जैसे सब्जी काटने में निकटतम वस्तु चाकू है, वह होगा तो सब्जी कटेगी'' उसका नाम करण है , जैसे लकड़ी काटने में प्रहार करते हुए हाथ का संसर्ग होने से प्रहार करता हुआ जो कुलाहड़ा है वो कर्णत्व का भागी होता है ।। ३९ ।।

अब मन और इंद्रियों की तुलना कर रहे हैं-

द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद् भृत्यवर्गेषु ।। ४० ।।

सूत्रार्थ= दोनों प्रकार की इंद्रियों में मन प्रमुख है, जैसे संसार में श्रमिकों का नेता प्रमुख होता है।

[(द्वयोः) बाह्याभ्यन्तरयोरिन्द्रिययोः (प्रधानं मनः) प्रधानं करणमेकादशमुभयात्मकं मनः] बाह्य और आभ्यांतर दोनों प्रकार की इंद्रियों में (दश बाह्य इंद्रियाँ एवं एक मन आभ्यांतर) इनमें ग्यारहवि (मन) इंद्रिय मुख्य है **[(लोकवत्-भृत्यवर्गेषु) यथा लोके भृत्यवर्गेषु स्वामी प्रधानो भवति]** जैसे लोक (समाज) में भृत्य (नौकर) वर्ग में प्रबन्धक (नेता) मुख्य होता है, **[अत्रापि मनसः स्वामिभूतस्य भृत्यवर्गौ द्वौ ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रयाख्यौ]** यहाँ पर भी जो मन है उसके भी दो भृत्य वर्ग हैं ज्ञानेद्रिय और कर्मेन्द्रिय इन सबका वह प्रबन्धक नेता है इसलिए वह मुख्य है।। ४० ।।

मन और इंद्रियों में मन क्यों प्रधान है? इस विषय में कारण बताते हैं-

अव्यभिचारात् ।। ४१ ।।

सूत्रार्थ= मन के बिना किसी भी इंद्रिय का कार्य सम्पन्न नहीं होता इसलिए मन प्रधान है, मन का इंद्रियों के साथ नियत संबंध होने से मन प्रधान है।

द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद् भृत्यवर्गेषु ।।४०।।

(द्वयोः) बाह्याभ्यन्तरयोरिन्द्रिययोः (प्रधानं मनः) प्रधानं करणमेकादशमुभयात्मकं मनः (लोकवत्-भृत्यवर्गेषु) यथा लोके भृत्यवर्गेषु स्वामी प्रधानो भवति, अत्रापि मनसः स्वामिभूतस्य भृत्यवर्गौ द्वौ ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रयाख्यौ ।।४०।।

कुतो मनसः प्रधानत्वमित्यत्र हेतुरुच्यते -

अव्यभिचारात् ।।४१।।

(अव्यभिचारात्) मनसोऽव्यभिचारात्-तस्योभयात्मकत्वात् सर्वेन्द्रियवृत्तिषु व्याप्तत्वात् तदन्तरेण तेषां व्यापारभावात्। नहि किञ्चनेन्द्रियं तद् व्यभिचरति तस्मात् ।।४१।।

अन्यो हेतुः -

तथाऽशेषसंस्कारधारत्वात् ।। ४२।।

[**(अव्यभिचारात्) मनसोऽव्यभिचारात्-तस्योभयात्मकत्वात् सर्वेन्द्रियवृत्तिषु व्याप्तत्वात् तदन्तरेण तेषां व्यापारभावात्**] मन को छोड़ ही नहीं सकते (मन के विना इंद्रियों का कार्य नहीं हो सकता) मन के उभयात्मक होने से सभी इंद्रियों में इसका कार्य होने से मन के बिना इंद्रियों का व्यापार हो ही नहीं सकता। [**नहि किञ्चनेन्द्रियं तद् व्यभिचरति तस्मात्**] कोई भी इंद्रिय उसको छोडती नहीं इसलिए वह मुख्य है ।।४१।।

तथाऽशेषसंस्कारधारत्वात् ।।४२।।

सूत्रार्थ=सभी संस्कारों का आधार होने से मन इंद्रियों में प्रमुख है।

[**(तथा) तथा (अशेषसंस्कारधारत्वात्) मनसोऽशेषसंस्काराधारत्वात्**] तथा मन सभी संस्कारों का आधार होने से वह मुख्य हैं। [**मनो हि समस्तसंस्कारणामाधारोऽस्ति**] मन ही सभी संस्कारों का आधार है उस, [**यद्यत्खलु केनचिदिन्द्रियेण कर्म क्रियते तद्विषयकाः सर्वे संस्कारास्तत्र मनसि ह्याधीयन्ते तस्मान्मनः प्रधानं करणम्**] जिस-जिस इंद्रिय से जो भी कर्म किया जाता है उससे संबन्धित जितने भी संस्कार होते हैं वह सारे मन में जमा हो जाते है ।।४२।।

मन सभी संस्कारों का आधार है, इस आकांक्षा के विषय में कहते हैं-

स्मृत्याऽनुमानाच्च ।।४३।।

सूत्रार्थ= स्मृति और अनुमान से पता चलता है की मन इंद्रियों में प्रधान है।

[**(स्मृत्या) स्मृतिर्भवति, न च संस्कारमन्तरेण सा सम्भाव्यते**] जो स्मृति उत्पन्न होती है, वह

(तथा) तथा (अशेषसंस्कारधारत्वात्) मनसोऽशेषसंस्काराधारत्वात्। मनो हि समस्तसंस्कारणामाधारोऽस्ति, यद्यत्खलु केनचिदिन्द्रियेण कर्म क्रियते तद्विषयकाः सर्वे संस्कारास्तत्र मनसि ह्याधीयन्ते तस्मान्मनः प्रधानं करणम् ।।४२।।

कथं हि मनसः संस्काराधारत्वमित्याकांक्षायामुच्यते -

स्मृत्याऽनुमानाच्च ।।४३।।

(स्मृत्या) स्मृतिर्भवति, न च संस्कारमन्तरेण सा सम्भाव्यते । उक्तं हि ''आत्ममनसोः

संस्कार के बिना नहीं हो सकती। [**उक्तं हि ''आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्वप्नः, तथा स्मृतिः''**] आत्मा और मन का विशेष संयोग होना चाहिए और संस्कार भी होना चाहिए मन में तब स्वप्न होगा [**(वैशे ०९.२.६) संस्कारश्च पूर्वदृष्टविषयस्यावतिष्ठते**] संस्कार पूर्व विषय का रहता है (जो आपने पहले देखा, सुना, सोचा है उसका संस्कार बनाता है) [**(अनुमानात्-च) सति तदिन्द्रियविघातेऽपि तद्द्वारा पूर्वदृष्टविषयस्य संस्कारेण स्मृतिर्भवति**] इंद्रिय विघात (गोलक के नष्ट) होने पर भी पूर्व में देखे गए विषय के संस्कार से स्मृति तो फिर भी हो सकती है (इसलिए संस्कार मुख्य है) हि तेनानुमीयते संस्काराधारो मनो बाह्येन्द्रियेभ्यो भिन्नमिति इंद्रिय (गोलक) के नष्ट हो जाने पर भी संस्कारों और स्मृति में कोई बाधा नहीं आती क्योंकि संस्कारों का आधार इंद्रिय नहीं मन है, यदि इंद्रिय संस्कार का आधार होता तो गोलक तो नष्ट हो गया उसके नष्ट होंने पर संस्कार भी नष्ट हो जाना चाहिए और संस्कार के नष्ट होने पर स्मृति भी नष्ट हो जानी चाहिए जबकि स्मृति तो आ रही है । इससे सिद्ध हुआ संस्कार गोलक (इंद्रिय) में नहीं मन में स्थिर होता है ।।४३।।

सम्भवेन्न स्वतः ।। ४४।।

सूत्रार्थ= स्मृति संस्कार के बिना स्वयं नहीं हो सकती।

[**(स्वतः-न सम्भवेत्) स्मृतिः खलु स्वत एव संस्कारमन्तरेण न सम्भवेत् संस्कारश्च मनसा विना न सम्भवेत्**] स्मृति स्वतः ही बिना संस्कार के नहीं हो सकती वह संभव नहीं, और संस्कार मन के बिना नहीं हो सकता।[**बाह्येन्द्रियाणां कार्यं तु विषयप्रत्यक्षीकरणमेव तस्मात्तेभ्यो भिन्नमान्तरं यद्वाऽभ्यरं करणं मनः प्रधानमिति निष्कर्षः**] बाह्य इंद्रियों का कार्य विषयों का प्रत्यक्ष करना है (फिर संस्कार कहाँ जाएगे) इसलिए इनसे भिन्न कोई दूसरा आंतरिक अथवा आभ्यांतर करण मन नामक मानना होगा ।।४४।।

आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात् ।। ४५।।

सूत्रार्थ= करणों (साधनों) में प्रमुख होना और गौण होना यह स्थिति उनके तुलनात्मक मूल्य के आधार पर है, अपना-अपना कार्य प्रत्येक का होने से करण तो सभी है।

संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्वप्नः, तथा स्मृतिः" (वैशे ०९.२.६) संस्कारश्च पूर्वदृष्टविषयस्यावतिष्ठते (अनुमानात्-च) सति तदिन्द्रियविघातेऽपि तद्द्वारा पूर्वदृष्टविषयस्य संस्कारेण स्मृतिर्भवति हि तेनानुमीयते संस्काराधारो मनो बाह्येन्द्रियेभ्यो भिन्नमिति ।।४३।।

स्मृतिश्च -

सम्भवेन्न स्वतः ।। ४४।।

(स्वतः-न सम्भवेत्) स्मृतिः खलु स्वत एव संस्कारमन्तरेण न सम्भवेत् संस्कारश्च मनसा विना न सम्भवेत्। बाह्येन्द्रियाणां कार्यं तु विषयप्रत्यक्षीकरणमेव तस्मात्तेभ्यो भिन्नमान्तरं यद्वाऽभ्यरं करणं मनः प्रधानमिति निष्कर्षः ।। ४४।।

अथ -

आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात् ।। ४५ ।।

(गुणप्रधानभावः) स एष गुणप्रधानभावः-गौणप्रधानभावः (आपेक्षिकः) अपेक्षाकृतोऽस्ति,

---

[(गुणप्रधानभावः) स एष गुणप्रधानभावः- गौणप्रधानभावः (आपेक्षिकः) अपेक्षाकृतोऽस्ति] ये जो गौण प्रधान भाव है (ग्यारह इंद्रियों में दश को गौण बताया और मन को प्रधान बताया) वह अपेक्षित है, करणत्वं सर्वत्र समानम् कर्णत्व सभी में समान हैं **[(क्रियाविशेषात्) तत्तद्व्यापारविशेषाद् विशिष्टव्यापारात्]** गौड़ता और मुख्यता वस्तु के कार्य के आधार पर है ।। ४५ ।।

तत्कर्मार्जितत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोकवत् ।। ४६ ।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा द्वारा कर्म किए जाने पर उनके फल के रूप में करण जीवात्मा को मिले हैं इसलिए वे करण जीवात्मा के लिए कार्य करते हैं, कार (वाहन) खरीदने के समान।

[(तत्कर्मार्जितत्वात्) पुरुषकर्मार्जितत्वात् करणस्य पुरुषकर्मानुसारतः सम्पद्यमानत्वात् (तदर्थम्-अभिचेष्टा) पुरुषार्थसाधनाय करणाभिचेष्टाकरणव्यापारो भवति] पुरुष ने कर्म किए थे उन कर्मों का ये फल है की उसे मन-इंद्रिय दिये गए, पुरुष कर्म के अनुसार ही उसे ये प्राप्त हुए हैं इसलिए पुरुष का प्रयोजन (भोग और अपवर्ग) सिद्ध करने के लिए इंद्रियों का व्यापार होता है **[(लोकवत्) यता लोके येन पुरुषेण ऋयं प्रदाय यानादिकं करणं गृहीतं तस्य पुरुषस्यार्थसाधनाय हि तद् भवति]** जैसे संसार में जिस पुरुष के द्वारा पैसा देकर के वाहन खरीद लिया वह साधन (वाहन) उसका प्रयोजन सिद्ध करने के लिए होता है।।४६।।

समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवत्-लोकवत् ।। ४७।।

सूत्रार्थ= सभी तेरह करणों में कर्णत्व समान होने पर भी बुद्धि की प्रधानता है, जैसे संसार में मुख्यमंत्री की प्रधानता है।

करणत्वं सर्वत्र समानम् (क्रियाविशेषात्) तत्तद्व्यापारविशेषाद् विशिष्टव्यापारात् ।। ४५ ।।

तत्कर्मार्जिततत्वात् तदर्थमभिचेष्टा लोकवत् ।। ४६ ।।

(तत्कर्मार्जिततत्वात्) पुरुषकर्मार्जितत्वात् करणस्य पुरुषकर्मानुसारतः सम्पद्यमानत्वात् (तदर्थम्-अभिचेष्टा) पुरुषार्थसाधनाय करणाभिचेष्टाकरणव्यापारो भवति (लोकवत्) यता लोके येन पुरुषेण क्रयं प्रदाय यानादिकं करणं गृहीतं तस्य पुरुषस्यार्थसाधनाय हि तद् भवति ।। ४६ ।।

पुनश्च -

समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवत्-लोकवत् ।। ४७ ।।

(समानकर्मयोगे) पुरुषार्थाय पुरुषप्रयोजनाय सर्वकरणानां प्रयोजनसाधनकर्म- योगः समान एव, तथापि (बुद्धेः प्राधान्यम्) मनसोऽपेक्षया बुद्धेः प्राधान्यमस्ति तस्या महत्त्वात् (लोकवत्) यथा लोके यः खलु भवत्यन्तरंगतमस्तस्यैव प्राधान्यं भवति। राजप्रयोजनाय राजसभायां मुख्यराजपुरुषाः प्राधान्यं भजन्ते, तेषामपि मध्ये राजमन्त्री सर्वप्राधान्यभाग् भवति । तथैवात्र बाह्येन्द्रियाणां मध्ये प्राधान्यं मनस्तदपेक्षया च बुद्धेःप्राधान्यमिति । लोकवत्, इति द्विरुक्तिरध्यायपरिसमाप्तिसूचिका ।। ४ ७।।

सांख्यदर्शने समाप्तो द्वितीयोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्य पतेः ।।

[(**समानकर्मयोगे**) **पुरुषार्थाय पुरुषप्रयोजनाय सर्वकरणानां प्रयोजनसाधनकर्म- योगः समान एव**] पुरुष का प्रयोजन सिद्ध करने के लिए सभी करणों का प्रयोजन साधन कर्म समान है, [**तथापि (बुद्धेः प्राधान्यम्) मनसोऽपेक्षया बुद्धेः प्राधान्यमस्ति तस्या महत्त्वात्**] तथा मन की अपेक्षा से बुद्धि की प्रधानता है उसका महत्व अधिक होने से [**(लोकवत्) यथा लोके यः खलु भवत्यन्तरंगतमस्तस्यैव प्राधान्यं भवति**] जैसे संसार में जो व्यक्ति मुख्यमंत्री के सबसे निकट होता है (जैसे पी ०ए ०=निजी सहायक) उसके नीचे अन्य अधिकारी आदि फिर उनके अधीनस्थ और भी अधिकारी आजाते हैं लेकिन मुख्यमंत्री के सबसे निकटतम निजी सहायक ही होता है उसकी प्रधानता अधिक रहती है अन्य अधिकारियों की अपेक्षा ऐसे ही जीवात्मा का निजी सहायक (निकटतम)बुद्धि होता है मन बाद में है तो बुद्धि की प्रधानता अधिक महत्वपूर्ण है।[**राजप्रयोजनाय राजसभायां मुख्यराजपुरुषाः प्राधान्यं भजन्ते, तेषामपि मध्ये राजमन्त्री सर्वप्राधान्यभाग् भवति**] राज्य प्रशासन सिद्धि के लिए राजसभा में मुख्य राज पुरुष ''विधायक'' जनता की अपेक्षा मुख्य होते हैं, उन सबमें जो मुख्यमंत्री होता है वह अधिक प्रधान होता है। [**तथैवात्र बाह्येन्द्रियाणां मध्ये प्राधान्यं मनस्तदपेक्षया च बुद्धेःप्राधान्यमिति**] उसी प्रकार से यहाँ बाह्य इंद्रियों के बीच में मन की प्रधानता है, और मन की प्रधानता से भी बुद्धि की प्रधानता अधिक है। [**लोकवत्, इति द्विरुक्तिरध्यायपरिसमाप्तिसूचिका**] सूत्र में लोकवत् शब्द दो बार पढ़ा इसका अर्थ है की अध्याय पूरा हो गया ।। ४७ ।।

सांख्यदर्शने समाप्तो द्वितीयोऽध्यायः स्वामिबह्ममुनिभाष्य पतेः ।।